
DURGA SAH MUNICIPAL LIBRARY
NAINI TAL
दुर्गासाह म्युनिसिपल पुस्तकालय
नैनीताल
Class no.
Book no.
25G
Reg no.

रांगेय राघव

इस लेखक की कलम को देख-कर अंग्रेजी पत्र ने लिखा—

"इस लेखक की कलम को यदि अभीसे न रोका गया तो भविष्यमें चलकर इस सरकार [अंग्रेजी] के इतनी चुभेगी जो कभी अपना दर्द नहीं समेट पायगी"

यह लेखक रांगेय राघव, है जो मद्रासी है—पर लिखता सब कुछ हिन्दी में है ! यह कविता भी लिखता है लेख लिखता है कहानी उप-न्यास और स्केच, जो हिन्दी भाषा में अपनी दृष्टि के अनोखे कहे जाते हैं ! अभी अभी मेघावी नाम के खण्ड काव्य पर १२०० रु. पुरस्कार भी मिल चुका है

—उद्धव

जीवन के दाने



लेखकः-
रांगेयराघव



मूल्य-
१।) रुपया-

प्रकाशक—

नंदकिशोर मित्तल.

व्यवस्थापक—

कारवां प्रकाशन,

६३, बड़ा सराफा,

इन्दौर.

प्रथम संस्करण २०००.

प्रधान पुस्तक विक्रेता—
नवयुग साहित्य-सदन,
खजूरी बाजार, इन्दौर.

प्रस्तुत पुस्तक हिन्दी के तरुण कथाकार, कवि और लेखक भाई रांगेय राघव की ९ कहानियों का संग्रह है। लेखक को सामन्ती अश्वमेध के उठते हुए धूँए से घृणा है। उसका 'नारी का विक्षोभ' विद्रोह करता है; और धार्मिक अन्ध-विश्वासों पर निर्मम से निर्मम प्रहार किये हैं। 'कमीनों' [सर्वहारा] से उसे गहरी सहानुभूति है और उन्हें वह मनुष्य की सतत् संघर्ष-शील जमात में ला खड़ा करना चाहता है। जिसकी प्रकाश-रेखा ही सम्पूर्ण मानव-जाति के उन्नति की गारंटी है।

प्रकाशक.



☆ अनुक्रमणिका ☆





पेड़

पंडित सालिगराम को अपनी छोटी-सी हवेली बहुत प्यारी थी। उन्होंने अपनी गरीबी से जीवन भर संघर्ष करके भी उसे अपने हाथों से बाहर नहीं जाने दिया था। चाहे घर कितना भी पुराना

क्यों न हो किंतु फिर भी पुरखों की शान था। आखिर वे उसी में पले थे। उन्होंने उसी में घुटने चलना प्रारंभ किया था, उसी में चलना सीखा था और जीना तो था ही मरना भी प्रायः उसी घर में निश्चित था। घर के सामने ही एक छोटा सा मैदान था। कहने को तो वह वास्तव में पंडितजी की ही जमीन थी, किंतु उन्होंने अपनी रहमदिली के कारण उसके चारो ओर कभी कांटे नहीं बिछुवाये। गांव के बच्चे आते। आज़ादी से गोदी के बच्चों को धूल में खेलने को छोड़ कर बड़े-बड़े बच्चे मैदान के बीच में खड़े बड़े से बरगद के पेड़ के नीचे छाया में कबड्डी खेलते। अकसर चांदनी रातों में डूडू डूडू की आवाज़ गूंजा करती। कभी कभी पंडितजी की रात में नींद खुल-खुल जाती जब कोई लड़का खम ठोक कर पूरी आवाज़ से चिल्लाता—

मेरी मूछें लाल लाल
चल कबड्डी आल ताल...।

किंतु पंडितजी ने कभी क्रोध नहीं किया। उनके पुरखों ने इसी छाया के लिये वह पेड़ लगाया था। गांव के लोगों से यह छिपा नहीं था कि जिस पेड़ का एक छोटा-सा पौधा मात्र लाकर उनके पुरखों ने अपनी सब्जी उगाने की जगह लगाया था, वही अब इतना फल फूल कर खूब फैल गया है। इसी की जड़ें अपने आप इतनी फैल गई हैं कि जमीन का सारा रस चूस लिया है। अब उस जमीन में दिन रात अंधेरा सा छाया रहता है। पेड़ की डालियों में अनेक पंछी रहते हैं। कौन नहीं जानता इन पंछियों की बात कि 'चरसी यार किसके, दम लगाये खिसके'। आज यहाँ हैं, कल वहाँ। सिर्फ मतलब के यार हैं।

उस जमीन में सब्जी की भली चलाई घास तक ढंग से नहीं उग सकती। उल्टे बरगद की जटाओं ने लौटकर अपनी मजबूत हथेलियों को धरती में घुसा दिया है कि पूरा महल-सा लगने लगा है। एक दिन पंडितजी के पुरखों ने इसी छाया के लिये तो उसे वहाँ धरकर पनपने के लिए छोड़ दिया था।

पंडितजी को कभी वह पेड़ नहीं अखरा। सदा उसकी हरियाली का वैभव देखकर उनकी आंखे ठंडी होती रही हैं।

और पंडितजी देखते कि गूलरों के गिरने पर बच्चों का जमघट आकर इकट्ठा हो जाता। सब ओर शोर करते। और गांव के महरबान जमींनदार को तो जैसे उस पेड़ से खास प्रेम था। दसहरे पर जब गद्दी होती तो वे उस शाम को इसी पेड़ के नीचे अपना दरबार करते। आसपास के गांवों तक से लोग उन्हें भेंट देने आते। भला वे राजा आदमी। पेड़ क्या हुआ उन्होंने उसे गांव वालों के लिए भगवान का अवतार बना दिया।

पेड़ भी एक ही कमाल का था। जगह जगह उसमें खोखले हैं। शायद जगह जगह उसमें सांप हैं। और उसके अरमानों की थाह नहीं। वामन को विराट रूप की भांति तीन डगों में ही सारे संसार को नाप लेना चाहता है। आकाश पाताल और धरती। ऊपर भी फैलता, नीचे भी उतरता है और धरती को भी जकड़ता चला जाता है। जैसे पृथ्वी को सँभालने वाले हाथियों में एक की संख्या बढ़ गई हो। हवेली की बगल में पेड़ की इस सघनता से एक सुनसान बियाबान की सी नीरवता छा गई है। और शायद अब वह दिखाई भी नहीं देती। पेड़ ही पेड़ छा गया है।

यही है वह पुरखों का, जो दैत्य आज संतान को ही खा जाना चाहता है।

और पहली ही बार उन्होंने अनुभव किया कि उनके घर की भी कोई बचत नहीं।

इधर ही झुका आ रहा है। आज उनकी हवेली गिरेगी, कल करीम का मकान गिरेगा फिर बस्ती के सारे मकानों पर उल्लू बोलेंगे। और तब भी यह दैत्य का सा बरगद अपनी जटाओं के अंकुश भूमि में गाड़कर खड़ा रहेगा जैसे सारी जमीन इसी के बाप की है।

विक्षोभ से उनका गला रुंध गया। उन्होंने एक बार और से अपनी मुट्ठियां भींच लीं और देखा पंडितानी का हृदय टुकड़े टुकड़े हो कर आंसुओं की राह बहा जा रहा था। उन्होंने बच्ची को गोद में धर लिया था और तरह तरह के विलाप कर रही थीं। रुदन की वह भयानक कठोरता उनके मन में ऐसे ही उतर गई जैसे सांप उनकी बच्ची को काट कर फिर उस पेड़ के खोखले में छिप गया होगा।

उन्होंने बड़ी देर तक निश्चय किया फिर धीरे से कहा–रोने से क्या अब वह लौट आवेगी ?

पंडितानी ने लाज से आज माथे पर घूंघट नहीं सरकाया क्योंकि इस समय वह बहू नहीं माँ थी।

लोगों ने पंखे बांध कर बच्ची को उस पर सुला दिया और पंडितानी चिल्ला उठी–धीरे बाँधो मेरी बच्ची को, धीरे कि कहीं उसको लग न जाये।

पंडितजी का हृदय भीतर ही भीतर कांप उठा और उनकी आंखों से आंसू की दो लाचार बूंदें धीरे से गालों पर बहती हुई भूमि पर टपक कर उनके मन की अथाह वेदना को लिख गईं.........

—२—

पंडितजी का निश्चय निश्चय था। करीम की राय तो पहले ही थी कि बरगद काट दिया जाये। कौनसा लाभ है उससे ? इधर बड़ी देह रखकर देता क्या है गूलर, जो न खाने के न उगलने के, फूलें को सी आंख न खूबसूरती की, न देखने की।

पंडितजी ने कहा इसी बरगद को मेरे पुरखों ने, आपके पुरखों ने, अपना समझ कर पाला था। आशा की थी कि एक दिन इसकी छाया होगी। आसमान से होने वाले अनेक वारों से यह हमें बचायेगा। लेकिन भइया करीम यही होना था क्या ?

'कौन सुनेगा तुम्हारी पुकारों को पंडितजी, करीम ने सोचते हुए कहा—यह बरगद उतनी ही जान रखता है जितने फल फूल सकें। इसे भला मतलब कि हम आप जी रहे हैं या मर गये। इसके तो कोई इन्सान के कान हैं नहीं।

'लेकिन पंडितजी ने तड़पकर कहा,–'दुनिया भर के जहर को अपने आप में भर लेने के लिए इसकी छाती में जगह की कमी नहीं।'

करीम ने हँसकर कहा–आप भी कैसी बातें करते हो? जानते हो रात को कैसी नशीली हवा में सोना पड़ता है हमें? और भइया यह तो इस पेड़ की आदत है। जहाँ बोओगे वहीं जड़ फैलायेगा। कोई नहीं रोक सकता।

'नहीं कैसे रोक सकता। इसे मैं कटवा दूँगा।' पंडितजी ने विक्षुब्ध होकर कहा।

'तुम,' करीम ने विस्मय से पूछा–'पंडित होकर पेड़ कटवा दोगे? धरम वरम सब छोड़ दोगे?

'धर्म,' पंडितजी ने आसन बदल कर कहा-धर्म का नाम न लेना करीम! मेरी बच्ची का खून है इसके सिर पर। इस पर हत्या का दोष है। जाने कितनों के बच्चे अभी और काटेगा? और कमबख्त का हौसला देखो। अब इसका जाल इतना फैल गया है कि हमारे ही घर को ढहा देना चाहता है। मेरे बाद तुम्हारी ही बारी है करीम.........'

करीम ने हाथ उठा कर कहा–'अल्लाह रहम कर। पंडितजी कहीं के न रहेंगे। इसे कटाना ही पड़ेगा।'

पंडितजी को कुछ संतोष हुआ। मन की जलन पर कुछ शीतल लेप हुआ। तब एक आदमी तो साथ है। पुरखे तभी तक अच्छे हैं जब तक पितर हैं, पानी दे दिया, लेकर चले गये, यह क्या कि अपने ही बच्चों पर भूत बन कर सवार और रोज रोज गंगा नहाने के खर्चे की धमकी दे रहे हैं। अरे अगर जिंदा ही नहीं खावेंगे तो इन कमबख्तों को कौन चरायेगा?

पंडितजी उठ पड़े। घर आकर पंडितानी से कहा।

उनकी आंखों में आँसू और होठों पर एक फीकी मुसकराहट छा गई। किंतु हृदय में एक शंका भीतर ही भीतर कांप उठी। फिर भी उन्होंने कुछ कहा नहीं।

गांव भर में पेड़ से एक दहशत छा गई। बच्चों ने पेड़ के नीचे खेलना बंद कर दिया। जैसे वह फूहड़ की तलैया का दूसरा भूत हो गया।

पेड़ के नीचे का मैदान नीरव हो गया। अब उसमें कभी कभी कोई कोई अकेली गिलहरी भागती हुई दिखाई देती है। और फिर शाखों में जाकर छिप जाती है अब कोई मुसाफिर उसके नीचे नहीं लेटता। क्या जाने कब सांप आये और सोते के कान में मंतर पढ़ जाये?

पंडितजी का निश्चय गांव में एक अचरज फैलाता हुआ फैल गया। लोगों के हृदय में उनके साहस उनके जीवन के प्रति एक अज्ञात श्रध्दा जाग्रत हो गई।

—४—

मजदूर पेड़ काटने लगे। गांव के अनेक अनेक लोग आते देखते और इधर उधर की बातें करके चले जाते। सचमुच अब पेड़ से प्रत्येक को एक न एक शिकायत थी जो आज तक किसी ने प्रगट नहीं की। आज सब ही को उस पेड़ से एक निहित घृणा थी। हमारे सीने पर ऐसा खड़ा था जैसे मूंग में मुगदर।

एकाएक जमींदार के कारिंदे ने कहा -'पंडितजी पा लागन।'

'खुश रहो भइया, खुश रहो।' पंडीतजी ने कहा--कहो कैसे आये ?

'सरकार ने याद फर्माया है।'

'चलता हूँ' पंडितजी उठ खड़े हुए।

'हुजूर' कारिन्दे ने कहा--'एक बात और है।'

'क्या बदा है ?' पंडीतजी ने भौं सिकोड़ कर उत्सुकता से पूछा।

'सरकार पेड़ का कटना बंद करवाना चाहिए।'

'पेड़ कटना क्यों?' पंडितजी ने एकदम टकरा कर गिरते हुए व्यक्ति की सी चीख निकाली।

'हाँ सरकार'

'नहीं हो सकता यह। पेड़ तो कट कर ही रहेगा। जमीन मेरी है मालिक का इसमें क्या उजर है ?'

सोच लीजिये पंडित।' कारिंदे ने आंखें मटका कर कहा।

'सोच लिया है सब।' न जाने पंडीतजी में इतना साहस कहां से आ गया ?

सुनने वाले सहमे से खड़े रहे। कारिंदा चला गया। पंडितजी ने कहा--काटो पेड़। यह तो कट कर ही रहेगा।

मजदूर फिर काटने लगे। अचानक एक दर्दनाक चीख। 'क्या हुआ ?' पंडितजी ने पुकार कर पूछा।

एक मजदूर शाख पर से नीचे टपक पड़ा। उसे सांप ने काट लिया था वह मर रहा था। मजदूर कूद कूद कर भागने लगे। पंडितजी ने चिल्लाकर कहा--'कहां जा रहे हो ? आज इसकी एक एक जड़ उखाड़ कर फेंक दो वर्ना कल यह सारी बस्ती को वीरान बना देगा। डरो नहीं। और पेड़ से मुड़कर कहा--ओ राक्षस तेरी एक एक डाल में मौत का भीषण ज़हर है आज मैं तेरी बोटी बोटी काट डालूंगा।

लोगों ने मजदूरों को घेर लिया था। वे कुछ नहीं समझ पा रहे थे। कोलाहल मचने लगा था।

एकाएक पंडितजी ने सुना--देखा ? तेरे पाप का फल। दूसरों को खाने लगा है। तूने धरम की जड़ पर वार किया है।

पंडितजी चौंक उठे। उन्होंने कहा--मालिक ! इसने दो खून किये हैं।

'खून इसने किये हैं कि तेरे पाप ने, तेरे परबीले जनम के पाप ने ? जमींदार साहब ने कहा ! पंडितजी ने तड़प कर कहा--और इसने हमारे घर की रोशनी बंद करदी है इसने हमारे घर में अंधेरा कर दिया है, इसने अपने भयानक गड्ढों से हमें खंडहर बनाने का इरादा किया है, इसने हमारे बच्चों को डसा है .... मैं आज इसे काटे बिना नहीं रहूंगा।

कहते हुए पंडित सालिगराम ने जमीन पर पड़ी हुई कुल्हाड़ी को उठा लिया।

जमींदार साहब ने कहा--'देख पागल न बन। देखता नहीं मेरे साथ कौन है ?'

पंडितजी ने देखा। पुलिस के सिपाही थे। जमींदार साहब ने मुसकरा कर देखा। पंडितजी चिल्ला कर कहने लगे--'मालिक जमीन मेरी है।'

'खामोश' जमींदार ने चिल्ला कर उत्तर दिया—'कैसे है तेरी जमीन ? जिस जमीन पर हमने दरबार किया है वह तेरी कहाँ है ? आज तू उसे काट रहा है, जिसकी छाया में हमने राज किया है। कल तू हम पर हाथ उठावेगा !'

'मगर यह धरती बगावत कर रही है वह मेरी हो गई है.........!' पंडितजी ने कुल्हाड़ा उठा कर कहा—'मैं इसे जरूर काटूंगा———!'

जड़ पर कुल्हाड़ा पड़ते ही पंडितजी मूर्छित हो कर गिर गये। उनके सिर पर ज़मींदार के गुर्गों के लट्ठ बज उठे।

और बरगद अपने चरणों पर बली का रक्त फैलाये ऐसा खड़ा था जैसे अश्वमेध के उठते धुंए में एक दिन साम्राज्य की पिपासा से तृप्त समुद्रगुप्त हुआ होगा।

कमीन

सीलनदार कोठरी में सुशील पड़ा-पड़ा सोचता रहा। आज चार वर्षों से उसने घर नहीं देखा, जैसे सारा जीवन एक बंजर हो गया है जिसमें कर्तव्य के संतोष का प्रसार ही ममता की घुटन है, स्नेह की पराजय है। हृदय का सूनापन उसकी दृष्टि में कार्यों के अभाव का लक्षण है। यदि मन का असंभाव्य उन्माद एक सुघर कार्य्य-कारण शक्ति से बद्ध है तो किसलिए बवंडर थक कर अपना शीश झुकाने की प्रतिक्रिया करे और क्षण क्षण के इस नश्वर संकोच पर बैठने का प्रयत्न करे जैसे साँझ के झिझकते अंधकार में पक्षी चिपककर बैठना चाहते हैं कि वृक्ष की नीरवता में उनका अस्तित्व निस्तब्ध-सा, निश्चल सा डूब जाये, खो जाये...।

कितनी विवशता है इस छोटे से जीवन में...पचास रुपये मिलते हैं, मँहगाई मिलाकर...

पड़ोस में अनेकानेक घर हैं। उनमें चमार रहते हैं कहते हैं अपने आपको मीना राजपूत। सुशील मुस्कराया—आजकल सबको एक मर्ज है, जैसे मालिक के चले जाने पर नौकर कुछ देर सोफा पर बैठकर सोचता है कि वही मालिक है और भय से इधर-उधर देखता भी है कि कोई देख न ले''

करवट बदली। इन चमारों को उससे कहीं अधिक तनख्वाह मिलने लगी है इस युद्ध में, फिर भी कमबख्तों को रहने की जरा भी तमीज नहीं·········बाहर मजदूरों के घर हैं। वही चमार। उनके घर भी हैं, वही झोंपड़े हैं, क्योंकि इनके अतिरिक्त उनके पास और कोई भेद-कारक चिन्ह नहीं। उनके पुरुषों के मुखों पर युगों की उदासीनता तह पर तह जमकर अंधकार बन गयी है, जैसे चलते-चलते पाँव के तलवे में घट्टे पड़ जाते हैं।

और फिर एक सिंहावलोकन में स्त्रियों का रूप याद आया। कोई-कोई तो वास्तव में सुन्दरी होती हैं। किन्तु रूप का अर्थ यौन-वासनाओं की अधकचरी तृष्णा की तृप्ति, असंतोष के अतिरिक्त और कुछ नहीं जैसे कच्चा मांस आग पर भूनकर कच्चा पका कैसा भी चबा लिया जाय और वह थोड़ी ही देर में उबकाई के साथ उलट पड़े···

रविवार है आज। कितना धुंधुकार है। इस कमरे में···

और ये मजदूर समझते हैं कि मैं बाबू हूँ। सुशील हँसा। हाय रे हिन्दुस्तान! यहाँ तो साफ कपड़े पहनने मात्र से इंसान ऊँचा समझ लिया जाता है। भीषणता का साम्राज्य है···गंदगी ···भूख ·····और धधकता अज्ञान······

सुशील का ध्यान टूटा। बाहर कुछ कोलाहल हो रहा था। कुछ लोग शायद आपस में लड़ रहे थे। उनकी आवाज कभी-कभी कोलाहल के ऊपर घहर उठती थी और उस समय सुशील कुछ बहुत ही फोश गालियों को सुनता··· इतनी फोश कि उनका फोशपन उनकी सार्थकता को भी पार कर जाता था।

मन में आया मरने दो उन्हें। कमबख्तों का रोज का यही काम है। जब हाथ में पैसे आये तभी ताड़ी पीना और लड़ना, जुआ खेलना और फिर घर आकर औरतों को मारना, और

इसी बीच में, इन लड़ाइयों के बीच में भी वे स्त्रियाँ माँ होने लगती हैं···

किन्तु जब कोलाहल बढ़ता ही गया तब विवश हो उसे बाहर आना ही पड़ा।

२

साँझ के धुँधलके में चारों ओर धूलि उड़ रही थी। बाहर औरतों की भीड़ एकत्र थी। उनकी जीभ ऐसे चल रही थी जैसे उसमें कोई छंद तोड़ने का व्याघात नहीं है। उस किच-किच से सुशील का मन एक नफरत से भीतर काँप गया जैसे कोई ईंट पर ईंट रगड़ रहा हो और सुनने वाले को लग रहा हो वह ईंट खा रहा हो, उसके मुख में धूलि की किसकिसाहट के अतिरिक्त कुछ न हो ······

सुशील को देखकर बुढ़िया ने आकर रोना प्रारंभ कर दिया। उसके साथ ही उसके लड़के की बहू थी। बुढ़िया की आँखों में पानी नहीं, पारा है, क्योंकि आँसू गिरने के पहले डबडबा कर ढुलकता है—जैसे यही उसका आज यौवन के चले जाने पर एक-मात्र नारीत्व है जिसे वह इस तरह बूँद-बूँद करके साधारण बातों पर नष्ट नहीं करना चाहती·····

सुशीलने विक्षुब्ध मनसे कहा— 'क्या है भग्गू की माँ?' कुछ देर वृद्धा रोती रही। उस समय किसी स्त्री का बहुत ही दर्दनाक रोना उठ रहा था। पुरुषों का स्वर सुनाई दे रहा था— हैं हैं, क्या कर रहा है? छोड़ उसे पाजी, क्या जान से मार कर आज फाँसी पर ही लटकेगा?

'रहने दे बे, मेरी बहू है···'

'अबे झगड़ा तो तेरा भग्गू से हुआ था···'

फिर एक कोलाहल, जैसे अब आकाश से मूसलधार वर्षा होरही है जिसमें कोई कितना चिल्लाकर स्वर ऊँचा करना चाहे,

सब व्यर्थ है……

उस मौन से सुशील घबरा गया। उसने इधर-उधर देखा। केवल कुछ सहमी हुई स्त्रियाँ खड़ी थीं, जिन पर मौत की-सी दहशत छा रही थी, और वे इस चिन्ता में मग्न थीं कि अब क्या होगा''

सुशील ने एक एक करके सबकी ओर देखा। बुढ़िया की आंखों में एक दयनीयता झलक उठी, और भग्गूकी बहूने धीरे से माथे पर अपनी ओढ़नी का पल्ला खींच लिया। सुशील मन ही मन हँसा। कौनसे जीवन की लाज है जिसको बचाने की साध अभी भी बाकी है। जिनका अज्ञान ही जिनकी मूर्खता का एकमात्र न्याय है, जिनकी खुली हुई हड्डियों को भी एक मांस की आवश्यकता है, क्यों न उसमें यह संकोच की अंतिम लपट भी अपने आप जलकर खतम हो जाय! उन आँखों में एक गर्व था अपने यौवन का; अपमान की झलक थी उसकी असफलता पर, और फिर अग्नि-परीक्षाकी सी दहक से जो उसे घूर रही हैं—जिनमें एक याचना है, एक दयनीयता……

सुशील ने कहा—क्या हुआ भग्गू की माँ?

उस एक स्वर में जैसे संसार की सभ्यता ने सहानुभूति-सूचक स्वर में एक पशु से पूछा था—तू क्या चाहता है? तेरे आर्त्तनाद के इतने कोलाहल में मन की वेदना को प्रकट करने वाली एक भी ऐसी ध्वनि नहीं हो सकती जो सार्थक हो, जिसे मनुष्य मनुष्यके रूप में पहचान सके।

भग्गूकी माँ ने रोते-रोते कहा—'बाबू!' स्वर अटक गया। कितना दुःख है जो विक्षोभ के कँटीले तारों की जंजीर को लाँघना चाहता है, लेकिन फँस जाता है……

और सुशील ने बहू की ओर देखकर कहा—क्या बात है बहू, कह न?

पास में ही कोलाहल बढ़ रहा है। अब भी कहीं कोई किसी

स्त्री को मार रहा है, और जो रावण ने भी शत्रु की पत्नी पर करने का प्रयत्न नहीं किया, वही आज शायद एक पति अपनी ही स्त्री के प्रति कर रहा है।

सुशील के मन में आता है कि जाकर उस मनुष्य की कलाई ककड़ी की तरह तोड़ दे और कह कि मूर्ख, तू जिसको मार रहा है वह तेरे बच्चों की माँ है······

किन्तु विचार टूट गया। बुढ़िया ने कहा--बाबू, सारे मस्ता रहे हैं। इनके मुँह में धर दूँ आग। दो पैसे मिलने लगे हैं तो यह तो नहीं कि भलमनसी से जोड़कर रखें कि वखत-बेवखत काम आयेंगे, बस मिले कि दारू-शराब, और कुछ नहीं। अब उसे देखो कल्ला को, जोड़ जोड़के कित्ते समान ले लिये और यह हरामी, बस फूँक फूँक ············

सुशील सुन रहा था। बुढ़िया उँडेले जा रही थी — वह हैं न मुख्तार साब, रात को अपने घर में जुआ खेलते हैं और सबेरे हारे हुओं से कहते हैं कि दो आने रुपये का रुक्का लिखो, नहीं चुकाओ, हम नहीं जानते·········

बुढ़िया का स्वर काँप उठा। बहू की आँखें एक अज्ञात भय से फैल गयीं। बुढ़िया कहती रही।...बहू के जेवर उतार ले गया। एक यह हँसुली रही है। अब इस पर भी टूटेगा बाबू, तुम धर लो इसे।

सुशील को काठ मार गया है यह भाव। परायी औरत की हंसुली कैसे रख ले वह! औरत जवान है, वह स्वयं कुंवारा है, अर्थात् समाज का दोनों से एक ही सम्बन्ध है --बदनामी। उसके आदमी को मालूम होगा तो? क्यों पड़े वह किसी के झगड़े में? उसीने हँसुली बनवायी है, ले जाने दो, उसे फिर बनवा देगा··· यह है उसी की। रोटी देगा, रहेगी; न देगा, भाग जायेगी, मारेगा हर कोई···

और बहू हँसुली पर हाथ रखे डरी-सी खड़ी थी जैसे वह

भी उसके शरीर- का अंग थी। कोलाहल अब भी उठ रहा था। सुशील ने सुना। मन चाहता था भेड़िये की तरह आज भी उन सबका वक्षःस्थल फाड़ कर उनके हृदय का कलुषित पिंड देखे जिसने मनुष्य को पशु बनाने में अपनी सारी सामर्थ्य लगा दी है और फिर अपने राक्षसत्व पर गर्व किया है कि हम मानव हैं, हम देवत्व के लक्षण हैं।

युगों तक मनुष्य की बुद्धि छीनकर उसे कोल्हू के बैल की भाँति चलाया गया है और आज वह मनुष्य कह रहा है कि मैं मनुष्य नहीं हूँ, बैल हूँ"'तुम यदि मुझे फिर से मनुष्य बनाना चाहते हो तो निस्सन्देह तुम्हारा भी कोई स्वार्थ होगा क्योंकि तुमने चाँदी का सिक्का हमें तब दिया है जब हमारी स्त्रियों के रूप की काई पर तुम्हारा उन्मत्त चरण फिसला है...

वह देखता रहा। कोलाहल अब भी उठ रहा था। और उधर वे लोग ताड़ी के नशे में चूर बावले होकर लड़ रहे थे, मनमाना फोश बक रहे थे कि एक बार सुशील ने स्त्रियों के बीच में खड़े उन शब्दों को सुनकर लाज से सिर झुका लिया किन्तु वे स्त्रियाँ खड़ी रहीं, जैसे उनके लिए उसमें कोई नवीनता नहीं थी, उनके दैनिक जीवन का कोलाहल यदि हाहाकार ही है तो फिर लाज कैसी क्योंकि सबसे बड़ी लाज जीवन है"' मृत्यु ही निर्लज्जता है"'

(३)

दूसरे दिन सुशील के सिर में दर्द था। वह कोठरी में पड़ा पड़ा सोचता रहा। उसके माथे में धीरे-धीरे चपका चल रहा था जैसे यह भार उसके निरावरण आकाश में अपने आप कुछ उदासी का भारवाही अवकाश बनकर छा गया हो।

कितना एकांत है इस जीवन में। भविष्य की सुख--छलना के ऊपर सारा वर्तमान निकलता जा रहा है, जैसे कोई लोहे को

पूरी सहिष्णुता से रेत रहा हो धीरे-धीरे, धीरे-धीरे···

सुबह से कुछ खाने को नहीं मिला कोई यह तक पूछने को नहीं कि तुमने भी कुछ खाया है ? अच्छे हैं ये चमार ही, कमसे कम खाने का तो इन्तजाम है न मिले वह दूसरी बात है. जब है तब तो है ही···

सुशील हँसा। उसमें और उनमें, कपड़ों का भेद है, साहस और निरपराधता का भेद है, एक-सा अनवरत । मजदूर अपने-अपने काम पर चले गये थे। अब सांझ को वे फिर लौट आयँगे। दिन भर वे जो मेहनत कर रहे हैं, दूसरे के लिए तेल निकाल रहे हैं···. अच्छे हैं वे बैल जिनका पसीना तेल नहीं है··· जिनकी चेतनाका सबसे उच्च स्वरूप भी प्राकृतिक नियम से पशुत्व है, जिनकी गुलामी का रूप भी पेट भर भोजन पा लेने पर सन्तुष्ट है···

सुशील ने सुना बाहर फिर सरौते चल रहे थे अर्थात् औरतें फिर चख-चख कर रही थीं । कभी-कभी किसी बुढ़िया के मुँह से कोई गन्दी गाली निकल जाती थी। सुशील उस समय मन ही मन एक संकोचसे क्षुब्ध हो जाता था। कैसी हैं ये स्त्रियाँ जो सब कुछ बकने मे भी तनिक नहीं झेंपती – अपनी ही बहू बेटियोंके सामने.........

बाहर कुछ समय कटेगा। यहाँ एक नीरवताका उपहास है। यहाँ भी तो नहीं है, जैसे एक सूखा पेड़ शीघ्र ही कटनेके लिए लहलहाते खेतको देख रहा हो.........

हवा का हलका-सा झोंका आया। यह भी जीवन की अधखुली सी अर्द्ध-चेतना है···

सुशील बाहर आ गया । नीमके पेड़ की छाया में कुछ घरों की स्त्रियाँ बैठी थीं । सुशील को देखकर दो-एक नव-युवतियों के होठों पर मुस्कान फैल गयी। निःसंकोच सुशील

उनके पास पहुँच गया। औरतें आपस में कलकी बात की चर्चा कर रही थीं, क्योंकि जो कल हुआ है वही शायद आज फिर हो'''

धन्ना की बहू को चोट आयी है। अपनी जान जबतक बस चला जेवर नहीं उतारने दिया, तब लोगों ने धन्ना को रोका '''बीच बचाव किया'''समझाया--बहू''दे दे उसे तंग न कर, तेरा आदमी है''दे दिया उसने, हरामी ले गया। मुख्तार कुछ कम कमीन है बाबू? तुम तो बाबू हो, पुलिस में रपोट लिखवा दो कि मुख्तार यह सब करता है'''

एक बात नहीं, शब्दों के घबराहट पैदा करने वाले कीड़े चल रहे हैं, सब बुरे हैं, सब मिटने चाहिए, किन्तु डर है मुझे,काट न खायें, मेरे आराम में बाधा न पड़े, क्योंकि मैं दूर रहना चाहता हूँ।

और सुशील को लगा जैसे इसका मन भीतर ही भीतर चिल्ला उठा—सुशील तू कायर है, तू चोर को चोरी करते देख मुँह फेर कर खड़ा है, तू समझता है तू चोर नहीं है।

बुद्धि पर आवाज होती है शिक्षा का नन्हा, बौना मटक कर बाहर निकल आता है।

सुशील ने कहा—तुम्हारी गलती है। तुम लोगों में एका नहीं है तुम्हें अपनी ताकत मालूम नहीं।

स्त्रियों में एक उत्सुकता का उदय हुआ। सबने उसकी ओर अचरज से देखा। यह क्या कह रहा है आज बाबू? इसमें हम क्या कर सकती हैं?

सुशील को लगा जैसे बहुत सी पथराई आँखों पर पत्थर रगड़ कर अब वह एक ऐसी चिनगारी निकालेगा जिसकी आगसे सारे संसार का अंधेरा जलकर भस्म हो जायगा और फिर इंसान कहेगा—बताओ, मुझे उनको दिखाओ जिन

लोगों ने मेरी इंसानियत को छीन लिया है, मैं उनका नाश करना चाहता हूँ......

सुशील को लगा आज जीवन के प्रत्येक कोने में क्रान्ति की आवश्यकता है, आज राजनीति राजाओं का खेल मात्र नहीं वरन् जीवन को जड़ से साफ करना है। उसकी कीमत ही नहीं आँकना. बल्कि उसे अपने मूल्य का स्वयं ज्ञान कराके उसे किसी योग्य बनाना है।

उसने कहा—तुम उन्हें खाना पका-कर खिलाती हो, तुम उनके बच्चों की माँ हो, तुम उनकी माँ हो, क्या तुम्हारा उन पर कुछ भी हक नहीं है ? क्या तुम उनकी नौकरानी हो ?

युवतियों के होठों पर व्यंग की मुसकान खेल गयी, जैसे बेचारा बाबू ! यह क्या जाने ?

वृद्धाओं की आँखें झुर्रियों को प्रकट करके और संकुचित हो गयीं। बालिकाओं के अबोध नयन विस्मय से फैल गये।

सुशील ने कहा—तुम सब एका करके कह दो कि जब तक शराब पीकर दंगा करना नहीं छोड़ोगे तब तक हममें से कोई भी खाना नहीं बनायेगी और जब वे भूखे मरेंगे तब लाचार हो उन्हें तुम्हारी बात माननी पड़ेगी। बोलो, ठीक है ?

सबने एक दूसरी की ओर देखा। अंत में धीरे से भग्गू की माँ ने कहा—बाबू ! आपका दिल बहुत अच्छा है। आपने जो कही सो तो अशराफ आदमियों की बात है···हम तो कमीन हैं बाबू, कमीन···

तिक्त हो गया है सुशील का मन, जैसे कोढ़िन पद्मिनी पर अट्टहास कर उठी हो···

और वृद्धा कह रही थी—औरत तो मर्द के पाँव की जूती है बाबू, अभी ब्याह नहीं हुआ, जब हो जायगा तब तुम भी समझ जाओगे। अभी तो बच्चा हो, निरे बच्चा···

नारी का विक्षोभ–

'अभी चार-पांच साल की ही बात है,' कल्ला ने अपने चश्मे को उतार कर साफ करते हुए कहा–'मैं तब लखनऊ यूनिवर्सिटी में पढ़ता था। आप तो जानते ही हैं कि लखनऊ में कैसी बहार है।'

बीच में ही सिद्दी बोल पड़ा–'ओह, बला की ठंड है। चंदू, जरा, यार, ढंग से बैठो! कोई खुदगर्जी की हद है कि सारा कम्बल अपने चारों तरफ लपेट बैठ हो। भाई, वाह?'

'अमाँ, तो बिगड़ते क्यों हो? आखिर कोई बात भी हो?' फिर मुड़ कर चंदू ने कहा—'हाँ, भाई कल्लाजी, फिर!'

कल्ला ने अपने दुशाले को और अच्छी तरह लपेट लिया। फिर कहा—'लखनऊ की जिंदगी के तीन पहलू हैं, एक नवाबों का, दूसरा छुटपूँजियें का, और तीसरा गरीबों का। क्या बतायें, यार, हमारा समाज ही कुछ…'

'खबरदार!' सिद्दी ने जोर से डाँट कर कहा—'कह दिया है, बको मत!'

और चंदू ने अपने मटरगश्ती वाले लहजे से कहा—'हाँ, भइ कल्लाजी, फिर?'

कल्ला फिर कहने लगा—'देखो, यार, यह बोलने नहीं देता !'

चंदू ने सिद्दी की ओर देखकर कहा—'खामोश !'

कल्ला ने कहना शुरू किया—'जवानी किस पर नहीं आती, मगर जो उस पर आई, वैसी शायद हमने कभी नहीं देखी। मेरे साथ एक लड़का सूरज पढ़ता था। जात का वह कायस्थ था, पर था एक लफंगा। लफंगा से तुम लोग कुछ-का-कुछ न समझ लेना। भाई, वक्त ऐसा है कि कालेज के लड़के चाहते हैं कि उनकी गिनती उस्तादों में हो। नेकटाई, सूट, चमचमाते जूते, कालेज में कोई कुछ पहन लें पर बातें करने तक का जिसे सलीका नहीं, वह किसी काम का नहीं।'

'सूरज की आँखें सदा लड़कियों की ही खोज में रहती थीं।'

'संयोग की बात है,' कल्ला ने आगे कहा—'एक लड़की सविता को देख कर सूरज पागल हो गया।'

'सूरज के बाप नहीं थे, माँ नहीं थी। हाँ, गाँव में उसके चाचा थे, चाची थीं। उनके बाल-बच्चे थे। और सबसे बड़ी एक और बात थी। चाचा जमींदारी का इंतजाम करते थे। सूरज उनका कहना मानने वाला लड़का था। लेकिन कानून की नजर से चाचा सूरज के चाचा हों, या सिकंदर के चाचा हों, जायदाद का वह कुछ नहीं कर सकते थे, क्योंकि वही जायदाद का मालिक था।'

'इस गारंटी के होते हुए सूरज को किस बात की चिन्ता होती !'

'सविता देखने में जितनी सुन्दर थी, उतनी ही चतुर भी थी। सबसे बड़ी बात उसमें यह थी कि वह कालेज की डिबेटों

में खूब हिस्सा लिया करती थी। जब वह बोलना शुरू करती, तो कोई कहता, 'इसका बाप भी ऐसी बातें नहीं सोच सकता! जरूर कोई उस्ताद है इसके पीछे, जो प्रेम के कारण अपने आपको छिपा कर इसे आगे बढ़ा रहा है' लेकिन इन बातों से होता जाता कुछ नहीं। अगर मान लिया जाय कि वह रट कर ही आती थी, तो रटने की भी एक हद हुआ करती है। आज तक हमने नहीं देखा कि 'चंद्रकान्ता सन्तति' के चौबीसों हिस्से किसी की जबान पर रखे हों। वह बोलने में एक भी भूल नहीं करती।

"उसके खयाल एकदम आजाद थे। विधवा विवाह, तलाक, सहशिक्षा, स्त्री का नौकरी करना, गोया जिन्दगी के जिस पहलू में नारी की जो बात है, वह सविता की ही थी। हर बात पर उसके अपने अलग विचार थे।

"नये विचारों की वह लड़की शाम को लड़कों के साथ घूमने निकलती, पार्टियों में जाती, कविता लिखती। कविता का मजाक शायद आप लोगों को मालूम नहीं। कोई आपकी तरफ आँखें उठा कर देखता तक नहीं तो बस, कविता लिखिये!

"सूरज ने जब सुना कि वह कविता करती है, तब दौड़े-दौड़े उस्ताद हाशिम के पास गया। उस्ताद ने उसे देखा, तो सब कुछ समझ गये। उनके लिये क्या बड़ी बात थी? कालेज का लड़का चटकदार कपड़े पहने उनके पास आया है। चेहरा गुम्रा नूर है, मतलब आँखों में वह खुशी नहीं, वह उत्साह नहीं, जो जवानी का अपना लक्षण है, तो आखिर इसका क्या कारण है? उस्ताद बिना पूछे ही भाँप गये। उस्ताद ने मुस्करा कर पीठ ठोंकी। कहा—'बेटा, शाबास! मगर मैं एक गजल के बारह

आने से कम नहीं लेता। हुलिया बताओ, जो टूटा-फूटा ख्याल हो, उगल जाओ, आला जबान में तरतीब से सजी हुई वह चीज दे दूँगा। कि जिसके लिये वह होगी, वह तो रीझेगा ही, इधर-उधर बैठे हुये भी दो-चार अपने आप रीझ जायेंगे।'

"एक पाँच रुपये का नोट काफी था। सूरज लौटे, तो गुनगुनाते हुये। मुझे खुद ताज्जुब हुआ चार बजे गया था, तब एक शरीफ आदमी था। अब सिर्फ छः बजे हैं, मगर शायर हो गये हैं।

"आप शायद पूछेंगे कि सविता तो करती है कविता हिन्दी में और सूरज साहब करते हैं शायरी उर्दू में, ऐसा क्यों? तो सुन लीजिये कि कायस्थों में अधिकतर मर्द हिन्दी नहीं पढ़ते, औरतें पढ़ती हैं।

"सविता भी कायस्थ थी। उसके एक छोटी बहन, एक छोटा भाई और एक बड़े भाई थे। बड़े भाई ला में पढ़ते थे। इरादा था छूटते ही वकालत शुरू करने का।

"सविता अंधी न थी। उसे सूरज की बातें मालूम हो गई लेकिन न जाने क्यों वह उसे एकदम टाले रही।

"सूरज सविता को गुजरते देखता, तो गजल पढ़ता। जब उसका कोई नतीजा नहीं निकलता, तो कहता, 'खुदा समझे उस कमबख्त हाशिम से! ऐसे हँस कर चली जाती है, जैसे हम सिर्फ हजल पढ़ रहे हों।'

"किन्तु प्रेम की कोई बात स्थिर नहीं है। उसके अनजाने के बंधन किसी भी वक्त जंग बन कर कठोर से कठोर लोहे को भी चाट जा सकते हैं। दोनों ओर एक-सी परिस्थिति है। दोनों ओर ही एक सूनापन है। आप कहें यह बेवकूफी की

इंतहा है। मैं कहूँगा असली प्रेम वही है, जिसे दुनिया बेवकूफी समझे, क्योंकि बेवकूफ वही है!'

चंदू ने टोक कर कहा—'हम समझ रहे हैं!'

कल्ला ने सिर को एक बार हिला कर कहा—'समझ रहे हैं, तो बताइये क्या हुआ?'

सिद्दी ने कहा—'नहीं, आप ही बताइये!'

कल्ला मुस्कराया। कहने लगा—'तो हुआ वही जो होना था।'

'यानी?' सिद्दी ने चौंक कर पूछा।

'एक दिन,' कल्ला ने कहा—'सविता के बड़े भाई मेरे पास आये।' कहा, 'आप सूरज के गहरे दोस्तों में से हैं न?'

मैंने कहा—'जी हाँ, फर्माइये।'

वह कुछ सोचते हुये बोले—'कैसा लड़का है?'

'इसके बाद सोरों के पंडों की तरह मुझे सूरज के सात पुश्तों के नाम गिनाने पड़े। घर की हालत बतानी पड़ी।'

'भाई साहब ने बताया कि उन्होंने कुछ उड़ती हुई उनके प्रेम की कहानियां सुनी हैं।' मैंने कहा—'जी वह सिर्फ कहानियाँ ही नहीं हैं।'

'मेरी तरफ गौर से देख कर भाई साहब मुस्कराये।' कहा—'खैर! मैं औरतों की पूरी आजादी का कायल हूँ। मेरी बहन ही सही, मगर जब मैं खुद चाहता हूँ कि कोई पसंद की शादी करूँ, तो मेरा फर्ज है कि उन्हें पूरी मदद दूँ।'

'अब मेरी भी सविता से जान-पहचान हो गई। हमारी जो मामी हैं, उनके भाई की बहन सविता की भाभी होने वाली थी। मगर अचानक उसके गुजर जाने की वजह से वह शादी न हो सकी।'

सिद्दी ने जम्हाई ले कर कहा—'बड़ा लम्बा किस्सा है !'

'लीजिये, साहब,' कल्ला ने चिढ़ कर कहा—'शादी हो गई सूरज और सविता की। छोटा हो गया अब ?'

'भाई तुम्हारे मुँह में घी-शक्कर !' चंदू ने सिगरेट पेश करते हुए कहा—'सिनेमा का-सा लुत्फ आ रहा है।'

सिद्दी ने कहा—"फिर ?"

कल्ला ने एक लम्बा कश खींचा, और धुँआ छत की तरफ छोड़ कर फिर कहना शुरू किया—'उसके बाद एक दिन की बात है। सूरज, मैं और मेरा एक और दोस्त, चंद्रकान्त, कालेज में घूम रहे थे। सविता की कालेज की पढाई जारी थी। अब भी वह अपने भाई के यहाँ ही रहती थी, सूरज के यहाँ नहीं। शादी के तीन चार महिने बीत चुके थे।'

'शादी हो जाने से तमीज आ जाती है, यह हमने जरा कम देखा है। सूरज की आदतें बदस्तूर कायम रहीं। किंतु इस बीच में यह जरूर हुआ कि मेरा सविता के यहाँ आना-जाना काफी बढ़ गया।'

'चंद्रकान्त मुँह का बक्की था, लेकिन दिल का बिलकुल पक्का। सौ लड़कियों को देख कर दो सौ तरह की बोलियां निकाल सकता था, मगर वह ज़हर उसके दिल में नहीं था। सिर्फ गले के ऊपरी हिस्से में ही था।'

'उस दिन चंद्रकान्त ने लड़कियों की एक भीड़ देख मुस्करा कर कहा—'देख, यार, कल्ला ! कभी-कभी तो देख लिया कर !'

'लेकिन हम चूँकि जरा ऊँचे खयालों के आदमी हैं, इन बदतमीजियों में हमारा दिल, आपकी कसम, बिलकुल नहीं लगता।'

'जिस लड़की की नीली साड़ी थी, वह चंद्रकान्त की

पुरानी जान-पहचान की थी। चंद्रकान्त ने हाथ से इशारा करते हुए मुझसे कहा—'देखा?'

"मैंने देखा, और बिलकुल चुप। लड़की की पीठ मेरी ओर थी। झट से लाइब्रेरी में घुस गई। सूरज अपने ध्यान में मग्न पहचान नहीं पाया उसे। झट से चंद्रकान्त का हाथ पकड़ कर बोल उठा—'चलो, जरा देखें तो हातिमताई की हिरोइन बनने लायक है या नहीं!'

"पहचान तो मैं गया था कि वह कौन है, फिर भी चाहता था कि सूरज को आज एक ऐसी नसीहत मिल जाय, जिसे वह जिन्दगी भर याद करे।'

"लड़की की पीठ ही फिर नजर आई। सूरज ने दबी आवाज से कहा—'काश, हमें भी दीदार हो जाता!'

"लड़की ने मुड़ कर देखा। सूरज के काटो तो खून नहीं। वह सविता थी। उसकी त्योरियाँ पहले तो चढ़ीं, लेकिन जब सूरज को पहचान लिया, तब न जाने क्यों उसे हँसी आ गई। भला बताइये, कोई स्त्री अपने ही पति को इस हालत में देखे, तो उसे कोफ्त तो होगी ही, लेकिन हँसी न आ जाये उसे, यह नामुमकिन है। रेल में कोई आपकी जेब काटे और आप जेबकट को पकड़ कर देखें कि वह तो आप ही का छोटा भाई है, तो हँस कर ही डाँटियेगा, या पुलिस के हवाले कर दीजियेगा?'

"हम तीनों लौट आये। चंद्रकान्त को मालूम नहीं था कि सूरज सविता का पति है। उसने कहा—'देखा आपने? है मुझमें कुछ अक्ल? पूरी भीड़ में ले जाकर किसके आगे खड़ा कर दिया आपको? जनाब जेब में पैसा चाहिये, बस फतह है!,'

"सूरज मेरी तरफ देख रहा था। मैं अब चंद्रकान्त को चुप होने का इशारा भी नहीं कर सकता था। वह बकता गया,

'सारा कालेज जानता है कि आज से दो साल पहले जब यह लड़की आई० टी० में थी तब इसका एक मास्टर से दोस्ताना था। मास्टर आदमी काबिल था। पढ़ाई में तेज, हाकी खेलने में नम्बर वन, और हिंदुस्तान में चुनाव और प्रेम में कमाल कर दिखाने वाली चीज भी उसके पास थी, मेरा मतलब मोटर से है। यह दिन-रात उसके साथ मोटर में घूमा करती थी। भाई हैं इसके अपने अलग मस्त।'

'कमबख्त बके जा रहा था। सूरज का सिर झुक गया। मैंने धीरे से इशारा किया कि चुप रह। मगर उसने समझा कि सूरज पर उस लड़की का प्रेम भूत बन कर सवार होने लगा है।' उसने कहा—'अमाँ, छोड़ो भी ऐसी लड़कियों से तो दूर ही रहा जाय, तो अच्छा ! यह हिंदुस्तान है, हिन्दुस्तान ! जब अपनी देसी सरकार बनेगी, तो इन अधगोरों का क्या हाल होगा, यह पंडित नेहरू भी नहीं बता सकते। जाने दो, यार ! समझदार आदमी हो। क्यों तुम प्रेम-वेम के चक्कर में फंसना चाहते हो ?'

'रात आ गई थी। सूरज बैठा सिगरेट फूँके जा रहा था। उसके चेहरे पर उदासी छायी थी। वह किसी घोर चिन्ता में पड़ गया था।' देर के बाद उसने कहा—'कल्ला, चाचा को मालूम होगा यह सब, तो क्या कहेंगे ?'

'मैंने सुना, और सोचकर कहा—'क्यों, क्या चन्द्रकांत को तुम्हारे चाचा का पता मालूम है ?'

'नहीं तो।'

'तो फिर उन्हें कैसे मालूम होगा ? मैं तो कहने से रहा और सविता भी क्यों कहने लगी। अब आप ही अगर इतने अक्लमन्द हों, तो मैं लाचार हूँ। कम-से-कम, भई, मैं तो इसमें कुछ नहीं कर सकता।'

सूरज ने कहा—'और तो कुछ नहीं, लेकिन मुझे एक बात कचोट उठती है। जाते वक्त चंद्रकांत ने कहा था कि जिस आदमी से इस लड़की की शादी होगी, वह भी एक ही काठ का उल्लू होगा।'

'गनीमत है, मैंने दिल में कहा।'

'एक काम करोगे?' सूरज ने कहा।

मैंने पूछा—'क्या?'

'सविता से मैं एकांत में मिलना चाहता हूँ। उसे कल यहाँ ले आओगे?'

मैंने कहा—'बेखुश! यह क्या मुश्किल है?'

'सूरज ने एक लम्बी साँस को जैसे लाल किले से रिहा किया।' मैंने कहा—'कल शाम को जाऊंगा। उसके यहाँ।'

'सूरज खुश नजर आता था। दूसरे दिन जब शाम को मैं उसके कमरे में घुसा, तो उसने हर्ष से मेरे कन्धों को पकड़ कर कहा'—'क्या कहा सविता ने?'

'मुझे मन-ही-मन बड़ी हँसी आई। कानून की निगाह से, धर्म की रूह से, समाज के नियम से वही उस औरत का देवता है। मगर बात ऐसी करता है, जैसे शादी के पहले का प्रेम हो रहा है।'

मैंने कहा—'बात जरा गौर करने की है। बैठ जाओ, तब कहूँगा।'

'सूरज ने बैठ कर सिगरेट सुलगा ली।'

मैंने कहा—'मैं गया था उसके पास।' उसने कहा—'ऐसे कैसे मिल सकती हूँ? अभी तो हमारा गौना भी नहीं हुआ।'

सूरज ने तड़प कर कहा—'मुझसे मिलने के लिये गौने की जरूरत है? मास्टर से मिलने को तो किसी की जरूरत नहीं

थी ? कैसे-कैसे आदमी हैं, इस दुनिया में ?'

मैंने कहा—'मास्टर से सिर्फ मिलना जुलना था। तुम्हारे यहाँ आने का मतलब स्पष्ट है। जमाना हँसेगा।'

'और तब न हँसता था ?' सूरज ने मुझे घूरते हुये पूछा।

मैंने कहा—'खूब हो, यार, तुम भी ! हकीकत से दुनिया डरती है। अपना ही मन साफ न हो, तो तिनका भी पहाड़ नजर आता है।'

"लेकिन सूरज की समझ में न आना था न आया।' उसने मेज पर मुट्ठी मार कर कहा–'तो एक महिने के अन्दर देख लेना !'

'मुझे फिर हँसी आई, जैसे वह कोई कमाल कर रहा हो।'

' लिख दिया सूरज ने अपने चाचा को। इजाजत लेना तो क्या एक तरह से इत्तला देनी थी। काम हो गया।'

' महिने भर बाद गौना हो गया। सविता उसके घर में आ गई। अब सूरज कभी-कभी मुझे भी घूरने लगा, क्योंकि मैं बार-बार सविता की तरफदारी करता था। कहा कुछ नहीं। थोड़े दिन तक जिंदगी ऐसे चली, जैसे चाय और दूध। लेकिन मैं आखिर कब तक चीनी बन कर स्वाद कायम रखता ?

'एक दिन दबी जबान से सूरज ने सविता से उसके पहले जीवन के बारे में प्रश्न किया।'

सविता ने कहा—'आप ऐसी बातें करते हैं ? मुझे सच-मुच बड़ा ताज्जुब होता है। आप लोग जो कुछ करते हैं, हम लोग तो उसका पाँच फी सदी भी नहीं कर पाते।'

"सूरज मन-ही-मन कुढ़ गया। उसके हृदय में पुरुषत्व की वह जायदाद की मिलकियत वाली बात, जो उसमें कूट-कूट कर सदियों से भरी हुई थी, भीतर-ही-भीतर चोट खाये, साँप की तरह फुंकार उठी। स्त्री और पुरुष की क्या बराबरी ? वह

में जिक्र है, यज्ञ के खम्भे में अनेक रस्सियाँ बाँधी जा सकती हैं। हाँ, एक रस्सी से दो खम्भे नहीं बाँधे जा सकते। सूरज चुप हो रहा। मास्टर से सविता का क्या सम्बन्ध था, इस पर कोई प्रकाश नहीं डाला गया। वह जो अँधेरा था, उसमें भीतर का अविश्वास नफरत का भयानक भेड़िया बन कर इधर-उधर घूमने लगा, कि कब शिकार की आँखें जरा झपकें, और कब वह झपट कर अपने दाँतों की नोकों को उसके गले में गड़ा दे, और उसके शरीर को नोंच-नोंच कर तीखे नाखूनों से फाड़ डाले।'

'सीधी-सादी बात थी। अगर सूरज पूछ लेता, तो बात वहीं की वहीं साफ हो सकती थी। लेकिन अपना पाप ही तो समस्त निर्बलता की जड़ है।'

सविता ने कहा—'आप मुझ पर अगर शुरू से ही भरोसा नहीं करेंगे, और बाहर वालों की बातों का ही यकीन करेंगे, तो न जाने आगे क्या हाल होगा। माना कि आप मुझे अपनी बात पूरी तरह कहने का अवसर देंगे, तो भी क्या यह जरूरी है कि जो मैं कहूँ, आप उसे सच ही मानेंगे ? जाहिर ही है कि कोई अपने मुँह से अपनी बुराई नहीं करता। तो स्त्री होने के नाते जब आप मुझ पर किसी तरह भी विश्वास नहीं कर सकते, तो मैं अपने आप चुप हो रहूँ, यही बेहतर है।' फिर तनिक रुक कर कहा—'आपने तो कहा था कि आप मुझे किसी तरह भी अपना गुलाम नहीं बनायेंगे। पर मैं देखती हूँ, शादी के पहले जो आपने अपने खयालों की आजादी दिखाई थी, वह सब झूठ थी।'

'सूरज उस समय तो हँस कर टाल गया। उसी शाम को उसके लिये एक नई रेशमी साड़ी भी लाया।' सविता ने पहले तो प्रसन्नता दिखाई, फिर उसने कहा—'इस महँगी में इसकी क्या जरूरत थी ?'

'तो क्या हो गया ?' सूरज ने प्रसन्न हो कर कहा—'पच्चीस जगह उठना-बैठना होता है।'

सविता ने उदास हो कर पूछा—'आप मेरी दिन की बातों का बुरा तो नहीं मान गये ?'

'सूरज ने आँखें झुका लीं। तीर मर्म पर जा कर गड़ गया था।'

सविता ने कहा—'आप मेरी बातों का बुरा न माना कीजिये। मुझे बचपन से ही ऐसे बक-बक करने की आदत पड़ गई है, क्योंकि माँ-बाप तो रहे नहीं, जो तमीज सिखाते। लेकिन एक बात का मैंने पक्का इरादा कर लिया है अब। काम वही करूँगी, जिसमें आप खुश हों। स्त्री के विचार वही होने चाहियें, जो उसके पति के होते हैं। आप मुझे माफ कीजिये!' कह कर वह रो पड़ी।

सूरज ने स्नेह से उसके आँसू पोंछ कर कहा—'तो रोती क्यों हो ? छिः!'

'वह चुप हो गई।'

सूरज ने मुझसे जब ये बातें कहीं, तो मैंने कहा—'यह है हिंदुस्तान! इसे कहते हैं हार!'

'क्या मतलब ?' सूरज ने कहा—'कैसी हार ?'

'एक जंगल का आजाद परिंदा पिंजरे में पड़कर सोच रहा है कि पिंजरा ही जीवन का सबसे बड़ा स्वर्ग है!'

'हूँ!' सूरज ने मेरी ओर तीक्ष्ण दृष्टि से देखा और कहा—'अभी अकेले हो न! जब तुम्हारी बारी आयगी, तब देखेंगे!'

'मैंने कोई उत्तर नहीं दिया। बेकार बहस करने से फायदा? मैं चुप हो रहा। पर मुझे ऐसा लगा, जैसे अँधेरे में चलते चलते किसी को एक-ब-एक यह खयाल हो जाय कि उसका कोई

पीछा कर रहा है, और धोखे से वार करके उसे मार देने की राह देख रहा है।'

सिद्दी ने चंदू की ओर देखा। दोनों इस समय गम्भीर थे। कल्ला ने नई सिगरेट जला कर फिर कहना शुरू किया—'आना-जाना पहले की तरह जारी रहा। तुम जानते हो, आदमी का दिल एक चट्टान की तरह है, जिसकी जड़ को शक की लहरें एक बार काटने में कुछ भी सफल हो जाती हैं तो एक-न-एक दिन ऐसा आता है, जब पूरी-की-पूरी चट्टान लुढ़क जाती है।'

कालेज में सूरज ने मुझसे कहा—'यार, आज तो शाम को गोमती में बोटिंग को चलेंगे। वहाँ से फिर सिनेमा। साढ़े चार बजे हमारे घर ही आ जाना।'

"जब मैं उसके घर पहुँचा, तो सूरज नहीं लौटा था। सविता ने गोल कमरे में ले जा कर मुझे बैठाया, और जा कर स्टोव पर चाय के लिये पानी चढा दिया।'

आ कर पूछा—'क्या खाते हैं आप?'

मैंने कहा—'सब-कुछ खाता हूँ, बशर्ते की कोई खिलाये!'

'हँस पड़ी वह।' बोली—'खाने की तो ऐसी पड़ी नहीं, पर उनका इंतजार तो करेंगे न?'

'मैंने कुछ नहीं कहा।'

'आते ही होंगे,' उसने मुस्करा कर कहा—'वक्त तो हो गया है। क्यों आज क्या कोई प्रोग्राम है?'

मैंने कहा—'जी नहीं, बस शाम को नदी की सैर करने का विचार है। फिर सिनेमा...'

उसने काट कर कहा-'तो और क्या रात भर घूमना चाहते हैं?' कह कर वह हँस दी। कहा-'आप जानते हैं, मैंने कालेज छोड़ दिया है।'

'जी, ऐसा क्यों ?' मुझे सचमुच मालूम नहीं था।

उसने मुस्कराते हुए उत्तर दिया—'उनको मेरा कालेज जाना पसंद नहीं। कहते थे, बी. ए. तो कर चुकी हो, एम. ए. करके क्या तुम्हें नौकरी करनी है ?'

'उसके स्वर में एक तीव्र वेदना थी, जो उसके मुस्कराने के प्रयत्न से और भी कठोर प्रतीत हुई' मुझे ऐसा लगा, जैसे खिलौने सामने फैला कर कोई बच्चे से कह रहा हो, 'खबरदार, जो हाथ लगाया !'

मैंने विक्षुब्ध हो कर कहा—'आपने सूरज से यह नहीं पूछा कि उनको बी. ए. तक पढ़ने की क्या जरूरत थी ?'

'अब यह तो आप ही पूछिये ! मुझमें तो इतनी ताब नहीं कि बार-बार उल्टी-सीधी बातें सुनूँ।'

'मैंने सुना। किंतु मन का कौतूहल फिर भी जागा ही रहा'। मैंने पूछा—'अच्छा, एक बात पूछता हूँ, माफ कीजियेगा, बात जरा कड़ी है। आप कालेज में न होतीं, तो सूरज बाबू क्या आपको कभी देख सकते थे ? और जब यही नतीजा निकलना था, तो चाचा से कह कर किसी बिलकुल ही पुराने ढंग की लड़की से उन्होंने क्यों नहीं शादी की !'

'मन तो बहुत कुछ बकने का था, लेकिन हठात् चुप हो गया, क्योंकि उसी समय सूरज कमरे में आ दाखिल हुआ। उसका प्रवेश इतना आकस्मिक था कि एक बार हम दोनों ही चौंक उठे। सूरज की तेज आँखों ने इसे देख लिया।'

'दूसरे दिन जब मैं सूरज के यहाँ गया, तो बाहर बरामदे में ही ठिठक गया।' अंदर से सूरज की आवाज आ रही थी, 'मेरी गैरहाजिरी में अगर कोई भी आये, तो दरवाजा खोलने की तो क्या, जवाब तक देने की जरूरत नहीं है।'

फिर सविता की आवाज सुनाई पड़ी, 'बहुत अच्छा ! आपके चाचाजी आयें, तब भी !'

'उन्हें तो दूर करने की कोशिश करोगी ही ! अजी, बाहरी लोगों के लिये कहा है।'

'तो मैंने किस-किसको बुलाया है ?'

'कल वह कौन आया था ?'

'मैंने बुलाया था कि आपने ? मैंने तो उल्टे आप पर एहसान किया कि आपके एक दोस्त की नजर में आपको गिरने नहीं दिया।'

'मुझे इन एहसानों की जरूरत नहीं !' सूरज का स्वर दृढ़ था, कठोर भी।

'आपकी जैसी मर्जी। मुझे किसी से क्या मतलब है ?'

'मैंने सुना। क्रोध से मेरी आत्मा छटपटा उठी। बाहर ही से लौट आया।'

'इसके बाद मैंने उसके घर पर आना-जाना बहुत कम कर दिया। इम्तहान आ गये।' कह कर कल्ला चुप हो गया।

'चुप क्यों हो गये ?' चंदू ने चौंक कर पूछा।

'सिगरेट !' माथे पर बल डाल कर पूरी आँखें फाड़ते हुए कल्ला ने कहा—'जरा थक गया हूँ।'

'तो हुजूर, मालिश ?'

'नो, थैंक्स !'

सिगरेट जला कर कल्ला ने कहा—'मुझे अपनी साइकिल वापिस मिल गई। जो लड़का मेरी साइकिल पहुँचाने आया...'

सिद्दी ने काट कर पूछा—'इसी बीच में साइकिल कहाँ से आ गई ?'

'यार, कोई मैं गढ़-गढ़ कर तो सुना नहीं रहा। अब जैसे जैसे याद आता जायगा, मैं तुम्हें सुनाता जाऊँगा। कोई सबक तो मैं आपको सुना नहीं रहा हूँ।'—कल्ला बिगड़ कर बोल उठा।

'अच्छा, अच्छा!' चंदू ने बीच में पड़ते हुए कहा—'तो साइकिल वाला लड़का?'

'हाँ,' कल्ला ने कहा– 'उसके हाथ में एक खत था। खोल कर पढ़ा'—

'प्रिय भाई,

"अब हम गांव जा रहे हैं। आपकी साइकिल वापिस भेज रही हूँ। धन्यवाद!

आपकी,
सविता।'

'साइकिल उठा कर धर ली। मुझे मालूम हुआ कि साइकिल ही इस विद्वेष की जड़ थी।'

'मेरे एक दोस्त थे। साइकिलों की चोरी करना ही उनका रोजगार था। एक बार वह कानपुर से एक साइकिल चुरा कर लाये।' बोले—'बहुत दिन से सस्ती साइकिल माँगा करते थे। अब लेलो!' मैंने कहा—'वाह, यार! गोया हम मर्द न हुए, औरत हो गये, जो आप जनानी साइकिल ला कर एहसान जता रहे हैं! माँगी थी पतलून, लाये हैं साड़ी!'

बोले—'भई, दिक न करो! हमें कुछ नहीं चाहिये, सिर्फ पंद्रह रुपये देदो! फिर मामला तय होता रहेगा।'

'चंद्रकांत की भाभी आने वाली थी।' उसने कहा—'अबे, भाभी के काम आ जायगी। ले ले!'

'एक दिन कालेज में सविता मिली। बात चलने पर उसने कहा'—'देखिये, घर हमारा है बहुत दूर। पैदल आते-आते दिवाला निकल जाता है।'

मैंने कहा—'आपको साइकिल तो दे सकता हूँ, पर कुछ ही दिन के लिये।'

'सविता प्रसन्न हुई।'

'अब वह साइकिल पर बैठ कर कालेज जाने लगी।'

'एक दिन सविता ने मुझे कालेज में रोक लिया। पैर में पट्टी बँधी थी। लँगड़ा-लँगड़ा कर चल रही थी।'

मैंने कहा—'यह क्या हुआ?'

'चोट लग गई।'

'तो अब तो ठीक है?'

'हाँ, एक तकलीफ दूँगी।'

मैंने कहा—'फर्माइये।'

'एक ताँगा ला दीजिये!'

'क्यों, साइकिल क्या हुई?'

'वह मैं वापिस कर दूँगी।'

'क्यों?'

'कल वह आये थे हमारे घर। मैं लौट कर आई, तो भैया ने कहा'—'सविता, यह साइकिल तू कहाँ से ले आई?' मैंने बताया। भैया ने कहा—'सूरज को मालूम है?' मैंने कहा, 'उनसे तो कभी मिलती नहीं।' भैया ने कहा, 'आज सूरज आया था, कहता था,' 'चाचा आये थे। उन्होंने सविता को साइकिल पर बैठ देखा था।'

'मैं सुनता रहा। सविता सुनाती रही,' 'चाचा ने बहुत बुरा माना था। भला कोई बात है कि घर की बहू-बेटियाँ साइकिलों पर घूमा करें!' भैया ने कहा—'सूरज बाबू कह गये हैं कि सविता को साइकिल पर जाने से तो रोक ही दें।' मैंने भैया से

कहा, 'आपने कहा नहीं कि कालेज दूर है ?' 'कहा था,' भैया ने कहा, 'पर सूरज ने कहा कि यदि यह बात है, तो पढ़ाई की ही ऐसी क्या जरूरत है ?' मुझे बहुत बुरा लगा। मैंने कहा, 'मैं तो साइकिल पर जरूर चढ़ूँगी।' तब भैया ने कहा, 'देखो, सविता, अब तुम बच्ची नहीं हो। शादी के बाद तुम्हें अपनी आँखें खोल कर चलना चाहिये ! यह बचपन अब काम नहीं देगा।' कह कर सविता चुप हो गई। फिर कहा—'भिजवा दूँगी आपकी साइकिल !'

मैंने कहा—'सुना है, आपका...'

'जी हाँ !' उसने लाज से सिर झुका कर कहा।'

'मेरा इशारा उसके गौने की ओर था।' वह ताँगे में चली गई।'

पत्र हाथ में ले कर मैंने सोचा, 'अब वे गाँव में होंगे। साइकिल लाने वाला लड़का खत देने के कई दिन बाद आया था। उसकी मेहरबानी थी, कोई नौकर थोड़े ही था वह।'

'एक-एक कर चित्र मेरी आँखों में घूमने लगे। यही थी सविता की सूरज के प्रति उपेक्षा। उसकी आदर्शों की वास्तविकता देख कर धीरे-धीरे उसका मन भीतर-ही-भीतर कुढ़ता जा रहा था।'

'किंतु यौवन फिर भी प्यासा होता है। समाज के जिस बंधन को हम विवाह कहते हैं, उसका कार्य-कारण रूप चाहे कैसा ही कठोर वास्तविक, आवश्यक क्यों न हो, किंतु उसकी पृष्ठ-भूमि में मनुष्य-जीवन का वही संचित व्याकुल मोह है।'

'मैं नहीं जानता कि यह कहते हुए मैं कहाँ तक ठीक हूँ कि मनुष्य के समस्त अन्वेषण, उसकी कला, उसके विज्ञान, युद्ध और जो कुछ भी उसकी हलचल है, उसके मूल में वही एक

'अँधियारी घिरने लगी ।' सविता ने कहा—'तो चलिये, अब आपके होटल चलें। वहाँ से आपका सामान ले कर चलेंगे।'

मैंने कहा—'कहाँ चलियेगा ?'

'घर' उसने हँस कर कहा—'हँसिये नहीं। कुल एक कमरा है। उसे घर कह लीजिये, बँगला कह लीजिये, मेरे लिये काफी है। छोटी बहिन को लिखा था आने को, लिखा है उसने कि एक हफ्ते के भीतर ही आ जायेगी। मैंने तो भैया से भी कहा था कि प्रेक्टिस-वैक्टिस का खब्त छोड़ दें, और आकर यहीं कोई नौकरी कर लें। चलिये न !'

'मैं लाचार हो गया। हम लोग चलने लगे।'

सविता ने कहा—'एक वक्त था, जब घर की हालत बहुत अच्छी थी। मगर अब हालत ठीक नहीं रही।'

'मैं सोच में पड़ गया। पारिवारिक जीवन की जो झंझटें अधेड़ औरतों को हुआ करती हैं, वह आज सविता को खाये जा रही थीं। कल वह एक लड़की थी। लजाया करती थी। आज उसकी बातों में एक बुजुर्गी थी, एक स्थिरता थी।'

'जब हम होटल में पहुँचे, तो काफी ठण्डी हवा चलने लगी थी। आसमान में कुछ बादल भी इकट्ठे होने लगे थे। एक ताँगे में सामान रखा। हम दोनों बैठ गये। सविता ने घर का रास्ता ताँगेवाले को समझा दिया, और फिर मुझसे बातें करने लगी। अबकी उसने मेरे विवाह के पहलू पर बात शुरू कर दी।'

'उसकी बातों में कोई सिलसिला नहीं था। उसके मन में जैसे इतना कौतूहल था, इतनी सम्वेदना थी कि वह मेरे विषय में कुछ जान लेना चाहती थी।'

'घर पहुँच कर उसने बत्ती जला दी, और खाने का इंतजाम करने लगी। चूल्हे पर कुछ चढ़ा कर जब वह बाहर आई,

तो उसमें और हिंदुस्तानी घरों की औरतों में कोई फर्क न था। कल वह शायद इन औरतों से नफरत करती थी।'

'मैं बैठा-बैठा सिगरेट पीता रहा।' सविता ने कहा—'कहाँ सोइयेगा ? बरामदा तो है नहीं। छत पर तो शायद रात को आप भींग जायेंगे।'

'आप क्या कमरे में ही सोती हैं ?'

'जी, नहीं, जब गर्मी होती है, तो ऊपर सो रहती हूँ। चटाई बिछाई और बिस्तर लगा दिया।' फिर रुक कर बोली—'सच, आपसे मिलने की बड़ी इच्छा थी। आप ही तो एक हमदर्द थे मेरे उस जीवन में, जिससे सब घृणा करते थे, और वह सच्चा विश्वास सब की आँखों में व्यभिचार का पाप बन कर खटका करता था। अरे...मैं तो भूल ही गई। कहीं दाल उफन न गई हो।'

'फिर वह उस छोटी-सी रसोई में घुस गई। मैं कुछ कुछ समझने लगा।'

'उसके बाद जब वह लौटी, तो मेरे सामने थाली धर दी। फिर अपने लिये खाने का सामान लगा लाई।'

'हम दोनों खाने लगे।'

खाते-खाते हठात् उसने पूछा—'कैसा खाना बनाती हूँ ?'

मैंने कहा—'अच्छा तो है।'

धीरे से उसने कहा—'वह लोग कहते थे कि मैं खाना बनाना भी नहीं जानती हूँ !'

'वह 'हूँ' मेरे कानों में सूई की तरह चुभ गई।

मैंने कहा—'कौन कहते थे ?'

'वे कहते थे,' उसने कहा—'मैं तो मेम हूँ। बेवकूफ ! वे

क्या जानें कि मेम भी अपने कायदे में अपना खाना बनाना जानती हैं। फिर क्या खाना अच्छा बनाना औरतों के लिये जरूरी है?'

'मेरे मुँह से निकला—'फिलहाल तो है ही। वैसे बना लेना काफी है। उस्ताद तो खाना बनाने में औरत कभी नहीं रही। पाक तो दो ही प्रसिद्ध हैं—भीम-पाक और नल पाक और दोनों ही पुरुष थे।'

'वह जोर से हँसी।' उसने कहा—'यहाँ नौकरानी थी, पर काम तो वह ही करेगी। करने को तो मना नहीं किया मैंने। पर कोई तुल जाय कि मेरा बनाया उसे पसंद ही नहीं आयेगा, तो कोई कितना भी अच्छा बनाये, क्या नतीजा निकलेगा? बस, वही हुआ जो होना था।'

'हम लोग खा चुके थे। छत पर चटाई बिछा कर बैठ गये मैंने अपनी सिगरेट जला ली।'

'मतवाली हवा थी। सिर पर पीपल खड़खड़ा रहा था। हम दोनों उस अँधेरे में पास-पास बैठे थे।'

सविता ने कहा—'अच्छा, सच बताइये, आपको यह सब देख कर कुछ ताज्जुब नहीं हुआ?'

मैंने कहा—'नहीं।'

'वह कुछ देर मुझे घूर कर देखती रही।' फिर कहा—'यह अँधेरी रात, यह सनसनाती हवा, और मैं किसी दूसरे की पत्नी! ताज्जुब नहीं होता तुम्हें, कल्लाजी? सोचते नहीं कुछ मेरे बारे में?'

'वह हँसी। फिर गम्भीर हो गई। कठोर स्वर में कहा—'विश्वास नहीं कर सको, तो न करना। किंतु यदि घृणा ही तुम्हारे आश्वासनों का एकमात्र आधार है, तो भी मैं तुमसे घृणा नहीं कर सकूँगी।'

मैंने रोक कर कहा—'सविता देवी !'

'सविता का बाँध टूट गया। आँखों में आँसू छलक आये, जिन्हें उसने मुँह मोड़ कर शीघ्रता से पोंछ लिया। जब उसने मेरी ओर देखा, तो हँस रही थी, जैसे कुछ हुआ ही नहीं।

सविता ने कहा—'एक दिन हम दोनों रात को बैठे बातें कर रहे थे। उन्होंने कहा—'सविता अब तो परीक्षा भी हो गई। तुम्हारा क्या विचार है ? गाँव चला जाय, तो कैसा ?' 'मैं नहीं जानती, उन्होंने क्या सोच कर यह प्रस्ताव किया। गाँव तो दूर न था, किंतु मैं गाँव जाने का नाम सुन कर ही डर-सी गई। न जाने मेरी आत्मा में एक अनजान यातना की भावना कैसे भर गई। किंतु मैंने कहा 'चलिये, मुझे कोई उज्र नहीं '

'तीसरे दिन हम चल पड़े। मैंने एक बसंती रंग की रेशमी साड़ी पहन रखी थी पैरों में ऊँची एँड़ियों की सैंडल थीं। बस, और कोई खास बात न थी।

'हमने इक्का कर लिया। इक्के वाले ने मुझे घूर कर देखा। उसने पूछा—'सरकार कहाँ चलूँ ?'

'उन्होंने पता बताया। उसी गाँव का इक्के वाला भी था। फौरन उन्हें पहचान गया। फिर उसने एक बार दबी नजरों से मेरी तरफ मुड़ कर देखा, और मुस्करा कर अपनी तरफ की बोली में कहा—'सरकार की पढ़ाई तो खतम हो गई ?'

'उन्होंने कहा—'हाँ।'

'इसके बाद वे कुछ चिंता में पड़ गये। उनके मुख पर स्पष्ट ही कुछ व्याकुलता के चिन्ह थे। मैंने अंग्रेजी में पूछा—'आप इतने परेशान क्यों हैं ?'

'उन्होंने मेरी ओर देखा। देख कर एक लम्बी साँस ली। शायद एक बार पूरे शरीर में एक कँपकँपी-सी दौड़ गई। उन्होंने

बहुत धीरे से अंग्रेजी में ही उत्तर दिया—'मैंने गलती की कि तुम्हें यहाँ इस तरह ले आया। अब भगवान के लिये कम-से-कम कुछ तो शरम करो! सिर तो ढंक लो।'

'मैं मन-ही-मन बहुत विक्षुब्ध हुई। मैंने भला कब मना किया था। किंतु शहर में तो इन्हें यह सब बुरा नहीं लगता। गाँव की तरफ पैर उठाते ही क्यों कुछ से कुछ होने लगे? जैसे मैं कोई अँग्रेज थी कि मुझे हिंदुस्तान में शरम करने की रीति भी नहीं मालूम थी। शरम का विचार भी कैसा अजीब लगता है। मद्रासी औरतें कभी सिर नहीं ढकतीं, तो क्या वे सब बेशरम हैं?

'खैर, एक सिर क्या मेरे दस सिर होते, तो भी मैं उन्हें ढँक लेती। एक दिन में तो किसी देश के रीति-रिवाज, अच्छे हों या बुरे हों, कभी बदल नहीं जाते।

'इक्का बढ़ा जा रहा था। उस राह के दचके याद आते ही अब भी कमर में दर्द होने लगता है। पहली ही बार मुझे मालूम हुआ कि गाँव की जिंदगी कितनी कठिन है।

'उसके बाद हम लोगों ने बैलगाड़ी पकड़ी। जैसे-जैसे गाँव पास आता जाता था, उनका चेहरा फक पड़ता जा रहा था। लगता था, जैसे उन्हें मुझ पर असीम क्रोध आ रहा हो। मेरा मुँह खुला ही था। यह मुझे वास्तव में बहुत ही घृणित मालूम दिया कि मुँह पर मैं एक लम्बा-सा घूँघट खींच लूँ और फिर उनकी एड़ियों पर नजर गड़ाये चलूँ।

'रास्ते में जो भी गाँव वाले मिलते, हमें खुली बैलगाड़ी में बैठा आपस में एक-दूसरे की ओर देख कर वे मुस्कराते। वह यह सब देखते, और जल भुन कर खाक हो जाते। किंतु करते क्या? एक बार तो मुझे लगा, जैसे अब एक-चाँटा पड़ने ही

वाला है। लेकिन मुझे स्वयं उनके ऊपर अचरज हुआ। यह आदमी शहर में क्या-क्या रंग नहीं दिखाता, जो यहाँ बिलकुल ही फक पड़ता जा रहा है? गाँव के बहुत-से छोटे-छोटे लड़के और लड़कियाँ हमें देख कर कौतूहल से इकट्ठी हो गईं।' मैंने उनकी बातों को सुना। वे आपस में कह रहे थे—'छोटे मालिक शहर से पतुरिया लाये हैं। आज कोठी में नाच होगा...'

'उनके आनन्द की सीमा न रही। उनके जीवन का यह भी एक बड़ा स्वर्ग है कि मालिक के घर रण्डी नाचेगी, और वह देख सकेंगे मेरे मनमें तो आया कि धरती फट जाय और मैं समा जाऊँ। वह घृणित शब्द 'पतुरिया' मेरे हृदय पर हथोड़े की सी भयानक चोट कर उठा। आज उन अज्ञानी देहाती अन-पढ़ बच्चों ने उस संस्कृति का पर्दा फाड़ कर रख दिया था, जो उनके मालिक ने उन्हें दी थी।

'मैंने देखा, वह चुप बैठे थे, जैसे यह व्यक्ति मोम की एक पुतली मात्र है। मेरी आँखों में आँसू उबल रहे थे, जिन्हें मैं जबरन अपने होंठ काट कर रोक रही थी। और बच्चों की खुशी का वह कठोर शब्द 'पतुरिया' मेरे सारे जीवन के संचित पुण्य और अभिलाषाओं के साथ एक भीषण बलात्कार कर रहा था।

'शहर में कोई यदि मुझसे यही बातें कहता, तो मैं उसकी आँखें नोंच लेती। किन्तु वहाँ मैं कुछ भी नहीं कर सकी। वास्तव में यह सोलहवीं सदी के स्थिर अन्धकार का बीसवीं सदी की चलती किरन पर हमला था।'

'दिन भर मुझे लम्बा घूँघट खींच कर रहना पड़ता था। किन्तु मैंने कभी कुछ नहीं कहा।'

'घर में उनकी चाची, उनकी बुआ, बुआ की बहिन की लड़कियाँ और एक बूढ़ी मामी थीं। उन बुढ़ियों को ज़रूर एक

नया शिकार मिल गया था।'

जब कभी वह मुझे मिलते, मैं कहती, 'शहर चलिये! यहाँ तो मन नहीं लगता,' तो वह कहते, 'कुछ दिन तो रहना ही होगा। सदा तो यहाँ रहना नहीं। फिर इतनी घबराती क्यों हो? थोड़े दिन ऐसे ही रह लो!'

'गाँव में अँधेरा हुआ नहीं कि बस ब्लैक आऊट हो गया। जहाँ लोग पढ़ना-लिखना नहीं जानते, जहाँ लोग दिन में इतनी कड़ी शारीरिक मेहनत करते हैं कि रात को कोशिश करके भी नहीं जाग सकते, वहाँ रोशनी जले भी तो किसलिये? वहाँ तो बस आदमी ने प्रकृति से बस इतना संघर्ष किया है कि सिर पर एक छप्पर छा लिया है और कुछ नहीं।'

'घर की बगल में अपना ही एक छोटा मकान था। उसमें उन्होंने लगभग तीन-चार साल पहले एक पुस्तकालय खोला था। उसमें सैंकड़ों पुराने उपन्यास भरे हुए थे। दैनिक पत्र भी आता था।'

'सुबह चाचीजी मुझे सबके उठने से पहले उठा देतीं। मैं तब झाड़ू-बाड़ू लगा देती, ताकि जब लोग उठें, तो मुझे उनके सामने यह काम करने की नौबत न आये। फिर मैं खाना बनाने में जुट जाती थी। सबको खिलाते-पिलाते प्रायः तीन बज जाते। फिर शाम को खाना बनाने की तैयारी होती। रात को जब सब खा चुकते, तब प्रायः नौ बज जाते। उसके बाद पैर दाबने की रस्म के लिये तैयार रहना पड़ता। जितनी स्त्रियां थीं, सभी के पैर दाबने पड़ते। आप ही बताइये, किसके पैर में दर्द नहीं होगा जब कोई आदमी पैर दाबने को खुद-ब-खुद पहुँच जाय?'

'साढ़े ग्यारह बजे रातको मैं एक दिन उपन्यास ले कर,

लालटेन जला छत पर बैठ गई।' दूसरे ही दिन चाची ने कहा—'बहू, तुम बहुत रात तक पढ़ती हो। लोग-बाग कहते हैं कि सिर खोले ही बहू छत पर बैठती है। यह तो भले आदमियों के घर के कायदे नहीं! रात को देर तक पढ़ोगी, तो सुबह उठने में भी देर हो जाया करेगी।'

'मैं खून का घूँट पी कर रह गई।'

'रात को मेरा बिस्तर भी उसी छत पर लगाया जाता था, जिस पर और औरतें सोया करती थीं। यह मैं मानती हूँ कि कभी कभी मैं पढ़ने के कारण देर तक जागती रहती, और उठने में देर हो जाती। कभी-कभी रात को मैं इतनी थक जाती कि फिर किसी के पैर-वैर दाबने नहीं जाती। इस पर एक हँगामा उठ खड़ा होता।' 'बहू क्या हुई, आफत का परकाला हो गई। भला कोई बात है? यह कोई कायदा है?'

'मैंने अब इधर-उधर ध्यान देना छोड़ दिया। रात को पढ़ने के बाद इतनी थकावट आ जाती कि जाकर बिस्तर पर एकदम बहोश हो जाती, और किसी बात का ध्यान ही नहीं रहता। जब दो चार दिन ऐसे ही बीत गये, तो अचानक एक रात उनके सिर में दर्द होने लगा। मैं मरहम ले कर गई। किंतु यह दर्द कैसा दर्द था, वह मुझसे छिपा नहीं रहा। दर्द की भी कोई हद होती है। रोज रात हुई नहीं कि उनका दर्द शुरू हो गया, और मुझे उसी तरह वहीं रह जाना पड़ता। हम दोनों को दूसरी छत पास होने के कारण कोई स्वतन्त्रता नहीं थी।'

'डाक्टर कहते हैं, इंसान को जवानी में कम से कम छः घंटे सोना चाहिये। किन्तु मेरी रात तीन घंटे की हो गई थी। उस थकान के कारण मुझमें एक प्रकार का चिड़चिड़ापन पैदा हो गया।'

एक रात उन्होंने कहा—'तो तुम पढ़ती क्यों हो?'

'मैंने कोई उत्तर नहीं दिया।

उन्होंने कहा, 'भारतीय नारी सहन शक्ति की एक प्रतिमूर्ति समझी जाती है।'

'मैंने ऐसी रटी हुई बहुत-सी बातें सुनी थीं। कहा कि आप मुझे शहर में ही रखें, तो अच्छा हो।'

'उन्होंने देर तक सोचा।' फिर कहा, 'शहर तो चलना ही है। लेकिन जिस गाँव के कारण शहर है, उसमें भी तो रहना होगा।'

'मैं फिर चुप हो गई।' देर के बाद मैंने कहा, 'आप बुरा न मानें, तो एक बात कहूँ।'

उन्होंने कहा, 'कहो!'

मैंने कहा, 'गाँव की यह जिन्दगी आपको जैसी भी लगे, मुझे तो अच्छी नहीं लगती। इससे तो यह अच्छा हो कि आप अपने पैरों पर खड़े होकर कमायें, खुद खायें और मुझे भी खिलायें। गरीबों को खून चूस कर, अपने स्वार्थों को कायम रखने के लिये उन्हें धोखा दे कर, अपने जीवन का आदर्श खो देना मुझे तो अच्छा नहीं लगता!'

'वह चौंक उठे।' उन्होंने कहा, 'तुम्हारी हर बात में कुछ नफरत है। प्रत्येक स्त्री तकलीफों के होते भी अपने पति से अवश्य मिलना चाहती है। पर तुम हो कि किस्से-कहानियाँ पढ़ कर सो जाती हो। तुम्हें कभी मेरी चिन्ता भी नहीं हुई। इसी से सिर दर्द बहाने तुम्हें बुलाना पड़ता है।' फिर एक लम्बी साँस खींच कर कहा, 'तुम्हें न जाने क्या हो गया है?'

'मुझे हँसी आ गई। मैंने मजाक में ही कहा, 'आपसे नफरत भी करूँगी, तो क्या हो जायेगा? आप फिर मेरे पति न रह कर कुछ और हो जायँगे क्या?'

'उन्होंने मुझे घूर कर देखा और कहा, 'तो तुम समझाती हो कि तुम फंस गई हो। अर्थात तुम मुझे प्यार नहीं करतीं?'

'मैं बड़े चक्कर में पड़ी। किसी से कोई कैसे कहे, मैं तुम्हें प्यार करता हूँ। सच, मेरा तो मुँह नहीं खुलता। एकदम बड़ी लाज-सी मालूम देती है। मैंने कोई उत्तर न दे कर एकदम चुप्पी साध ली। उन्हें जमींदारी की शान के विरुद्ध कही हुई बात अच्छी नहीं लगी। कहने लगे, 'खानदान की इज्जत को कायम रखना पहला फर्ज है, सचिता!'

'मैंने कहा, 'लेकिन अब तो सवाल ही दूसरा है। कल तक आप दूसरों को पिटवाने में अपनी शान समझते थे, आज वह बर्बरता बढ़ गई है। आप स्वतन्त्रता के आदर्श को ले कर चले थे और यहाँ रीति-रिवाजों की खूनी धारा में सब-कुछ बहाते चले जा रहे हैं। खानदान की इज्जत क्या इसी में है कि आप इसी तरह बेकार पड़े रहें, दूसरों के पसीने की कमाई खाया करें? क्या आप जिन रस्मों को खानदान की इज्जत कह कर पाल रहे हैं, आप उसी गँवारपन में विश्वास करते हैं?'

'वह घूरते रहे। कहा, 'तुम्हारी बातें कैसी रटी हुई सी लगती हैं। यहाँ कोई डिबेट हो रही है क्या?'

'मैंने कहा, 'आप इतनी बड़ी बात को हँस कर टाल रहे हैं? आपमें, मुझे यकीन हो गया है, साहस की कमी है।'

'उन्होंने कहा, 'धीरे-धीरे बात करो, सचिता! कोई सुन लेगा।'

'मुझे बहुत ही बुरा लगा।

'उन्होंने कहा, 'अच्छा मान लो तुम्हारे पीछे सब को छोड़ दूँ'-

'मैंने कहा, 'ऐसा आप सपने में भी खयाल न करें। अगर आपने ऐसा सोचा है, तो आपने बड़ी भारी गलती की है। मैं

अपने लिये नहीं कहती। मैं उस विचार-स्वातंत्र्य और आदर्श का विचार करके कहती हूँ, जिसके आप पहले स्वयं कायल थे। घर छोड़ने को तो मैंने नहीं कहा। मैंने सिर्फ कहा कि पुराने ढर्रे की झूठी रस्मों को छोड़ कर हम और आप वही करें, जो आज तक कहा है।'

'उन्होंने कहा, 'ऐसा नहीं हो सकता, सविता! भले ही तुम आदर्शों की दुहाई दिये जाओ, लेकिन जो कुछ होगा, उसे देख कर लोग समझेंगे कि एक औरत की बात सुन कर घर छोड़ चला गया कपूत। और यह मैं कभी बर्दाश्त नहीं कर सकूँगा?'

'एक बार मेरा रक्त क्रोध से खौल उठा। कितना भागी कायर था वह व्यक्ति, जो अपने जीवन की सारी झूठ का सहारा ले अपनी प्यास बुझाने के लिये मुझसे प्रेम की आड़ में विलास चाह रहा था।

'सुबह की सुफेदी झलमलाहट पर मुर्गे की गूँजती हुई बाँग सुनाई दी। मैं उठ गई, क्योंकि मेरे झाड़ू लगाने की बेला आ गई थी।

'मैंने एक बार करुण आँखों से उनकी ओर देखा, किन्तु वह झपकी ले रहे थे।

'मैं उठ गई। वह सो गये।

'उस दिन मेरा शरीर थकान से चूर-चूर हो रहा था। काम तो करना ही था। यदि किसी से कहती कि मैं सोना चाहती हूँ, रात को सो नहीं सकी, तो जो सुनता वही मुझे निर्लज्ज समझता। लज्जा और संकोच ने मेरी जीभ को तालू से सटा दिया, और मैं बराबर काम करती रही।

'दोपहर को जब मैं कमरे में बैठी थी, मुन्शीजी पुस्तकालय बन्द करके चाभी देने भीतर आये। उस समय वहाँ कोई और नहीं था। मुन्शीजी मुझे देख कर ऐसे घबरा गये, जैसे कमरे में

कोई साँप पड़ा हो। मैंने कहा, 'चाभी मुझे दे जाइये, और कल का अखबार आपने क्यों नहीं भेजा ?'

'मुन्शीजी ने लजाते हुये सिर नीचे करके जवाब दिया, 'भिजवा दूँगा।'

'वह चले गये। इसी समय मैंने उनकी बुआ की बहिन की बेटी का कर्कश स्वर सुना—'आय हाय ! देखो तो, कैसी लपर-लपर जीभ चला रही है ! जरा भी तो हया शर्म हो !'

'मैं एकाएक काँप उठी। उत्तर दिया बूढ़ी मासी ने—अच्छा किया, दुल्हिन, बहुत अच्छा किया ! मुन्शीजी को देख कर तेरी चाची या सास तक घूँघट खींच कर चुप हो जाती हैं। एक नहीं उनके अनेक बच्चे हो चुके हैं। तेरे एक आध तो हो जाना।'

'एक तीसरी आवाज सुनाई दी—'अजी हटो, मामीजी ! कोई बात है। उल्टे मुन्शीजी शरमा रहे थे। और दुल्हिन रानी हैं कि मुहँ तक नहीं ढँका गया। छिः ! यह भी कोई बात है ?'

'बुआ की भाँजी ने कहा—'पढ़ी-लिखी हैं, जी ! तुम तो हो गँवार ! शहरों का यही रिवाज है। पराये मर्द से जब तक हँस-हँस कर बातें कर न ले, तब तक खाना कैसे; हजम हो ? जान, बेचारी कितने दिन के बाद आज यह मौका पा सकी है।'

'इसी समय चाची आई। उन्होंने भी सुना। तुरन्त आ गई मेरे कमरे में। हाथ मटका कर कहा—'हाय, दुल्हिन, यह तूने क्या किया ? झाड़ू न लगी, न सही, पैर न दबाये तूने बड़ी बूढ़ियों के ! तेरी बात तेरे ईमान पर ! हमने कभी तुझे कुछ कहा हो, तो हमारी जबान में कीड़े पड़ जायँ ! मगर यह क्या गजब है कि पढ़ाई-लिखाई ने तेरी चुटिया के नीचे से अकल ही साफ कर दी ?'

वह क्रोध से हाँफ रही थीं। मैं चुप बैठी रही, जैसे मैं जीवित नहीं। मुझे मालूम हो रहा था कि जो कीड़े मेरी नसों में खून बन कर भाग रहे थे, वे अब धीरे धीरे जमने लगे थे, मरने लगे थे, और अब वे सब मर जायँगे, और उन्हीं के साथ मैं भी मर जाऊँगी। मेरे मुख पर पीलापन छा गया। हाथ-पाँव काँपने लगे। उस कठोर लांछन से मुझे प्रतीत हुआ कि वास्तव में अब जिन्दा तो हूँ ही नहीं, लेकीन यह लोग हैं कि मेरी लाश पर थूकने से भी बाज नहीं आते।

'चाची ने फिर कहा—'मामीजी, दुहाई है तुम्हें! इस घर में आज तक कभी ऐसा नहीं हुआ! आज तक किसी ने इस घर की औरतों की शकल देखना तो क्या, यह भी नहीं जाना कि उनकी आवाज़ कैसी है। क्या कहेंगे गाँव के लोग खुल कर? जब जमींदार के घर ही से धर्म उठ जायगा, तब लोगों के घर में क्या रहेगा? हमने सोचा था, अभी लड़की है, सब ठीक हो जायगा। लेकिन मामीजी, जिसके मुँह खून लगा हो, उसकी पानी से प्यास बुझेगी?"

मैं जोर से रो उठी। मैंने चिल्ला कर कहा—'किसका खून [illegible] है मेरे मुँह? किस काम से इनकार किया है मैंने, जो आप मुझ पर दोष लगा रही हैं?'

'ओहो!' चाची चिल्ला उठी—'दुलहिन रानी पर दोष लगा दिया मैंने! दुश्मन तो मैं हूँ ही! इसी से दुश्मनी निकालने के लिये ही तो मैंने सूरज की माँ के मरने पर उसे पाल-पोस कर इतना बड़ा किया था!'

'मामीजी ने डाँट कर मुझसे कहा—'अरी, बेहया! क्या करूँ, समझ में नहीं आता! जमाना बदल गया है, वर्ना पुराने वक्तों में इतनी बात कहने पर सारे दाँत झाड़ दिये जाते। मर्द

नहीं रहे, नेटी. वर्ना मजाल है औरत की कि 'आ' से 'ऊँ' कर जाय ?'

'बुआ ने कहा—'सूरज ने सिर चढ़ाया है इसे। जूती सिर पर धरेगा, तो धूल लगेगी ही। हम तो जानते ही थे शहर की लड़कियों के गुन। क्या किसी से छिपे हैं ? देखो न उस लछमन को ! जात का नीच ही है, मगर राजी नहीं हुआ कि शहर की लड़की आ जाय उसके घर में बहू बन कर। अरे, जो नीच जातों ने नहीं किया, वह तुमने किया ! मेरे राम, इस घर को अब क्यों भूलते जा रहे हो ?'

'और सचमुच शाम तक खबर गाँव भर में फैल गई। मैं कमरे में छिप कर बैठी रही। समझ में नहीं आता था कि क्या करूँ। खाना बनाने गई, तो मुझे सबने लौटा दिया यह कह कि 'जा, हमें आबरू बेंच कर सुख नहीं भोगने हैं !''

'मैं लौट आई। चारों ओर अँधेरा ही-अँधेरा नज़र आता था। एक ही आशा थी कि कम-से-कम वह तो मुझे अपराधी न समझेंगे। कम-से-कम वह तो मेरी रक्षा करेंगे ?

दिन बीत चला। मेरी किसी ने सुधि तक नहीं ली। किसी ने खाने तक को नहीं पूछा।

रात को जब वह आये, तो शिकायतों का ढेर लग गया। ईंटों की बनी वे दिवारें शायद नहीं रहीं, क्योंकि बातों के तीर उन्हें छेद-छेद कर मेरे अन्तस्तल में बार-बार गड़ने लगे। और मुझे दर्द से चिल्लाने का तो क्या, कराहने तक का अधिकार नहीं था।

'चाची ने कहा—'सूरज, इसे तो तू शहर ही ले जा, बेटा ! इसमें घर-गृहस्थी में बहू बन कर रहने का सलीका नहीं है बिलकुल !'

'मामीजी ने भीतर से चिल्ला कर कहा—"जाने कौन जात-कुजात उठा लाया है। अच्छा ज़माना आया है!'

'क्या बात है आखिर? 'उन्होंने घबरा कर पूछा

'और जैसे यह कुछ हुआ ही नहीं! चाची ने ताना मार कर कहा—"तो क्या राह में गाने-बजाने की जरूरत थी? भैया सूरज, हम तो कुछ कहते नहीं, पर खानदान में अपने चाचा के बाद बस तू ही सब का मालिक है। हमने तो तुझे अपना बेटा मान कर ही पाला है। चाहे तो रख, चाहे छोड़ दे! हमारा क्या है, रो लेंगे! मगर तेरी तो गत बन जायेगी।

'वह घबराहट से बोल उठे—'पैर नहीं दाबे? झाड़ू नहीं दी? खाना नहीं पकाया?'

'कौन कहता है, भैया 'चाची ने फिर कहा—'कसम है मेरे बच्चे की, जो आज तक कभी हम कोई ऐसी बात जबान पर भी लाई हो। इसका तो पढ़ना गजब है, बेटा! पढ़ेगी तो आधी रात तक, और यह भी नहीं कि रामायण, उल्टे वह किस्से-कहानी तोता मैना के'

'मैंने सुना वह कुछ बोले। फिर उनके पैरों की चाप सुनाई दी। जैसे वह वहाँ से चले गये हों।

'स्त्रियाँ अब भी आपस में फुस-फुस किये जा रही थीं। और मैं ने सोचा, कमबख्त पढ़ाई न हुई मेरी मौत हो गई!

'जिस समय उन्होंने कमरे में प्रवेश किया, अँधेरा छा रहा था। उनके पीछे-पीछे ही लालटेन लिये चाची थीं।

'वह मेरे पास आ गये। कठोर स्वर में उन्होंने कहा—'क्यों? यह मैं क्या सुन रहा हूँ?'

'मैंने उत्तर नहीं दिया।

'चाची ने कहा—'ओहो ! अब इतनी लाज हो गई कि बोल गले से निकलने के पहले मों गचोके खा रहा है ?'

'मैंने क्रोध से सिर उठाया। मेरी आँखो के आँसू सूख गये। मैंने चिल्ला कर कहा—'क्या किया है मैंने, जो तुम सब मेरा खून पी जाना चाहती हो ? क्यों नहीं मुझे गला घोंट कर मार डालते ?'

'उन्होंने मुझसे फिर कहा—'मुझे जवाब दो ! मैं जानना चाहता हूँ। आज न सही कल। मैं इस घर का मालिक हूँ। मेरे ऊपर खानदान की इज्जत का सवाल है। क्या जरूरत थी तुम्हें मुन्शीजी से बात करने की ? समझा नहीं दिया था मैंने तुम्हें ? या अकेली तुम ही एक शहर की पत्नी हो ? मैं तो हमेशा से गांव ही में रहा हूँ।'

'चाची कमरे से बाहर चली गई। लालटेन वहीं छोड़ गईं। मैंने देखा, वह क्रोध से व्याकुल हो कर कांप रहे थे।

'उन्होंने कहा—'अब तक मैं तुम्हारी बात को तरह देता आया हूँ। शुरू में तुम्हारे पच्चीसों किस्से सुने, पर सुन कर पी गया। और कोई होता, तो मार-मार कर खाल उधेड़ दी होती। मैंने कहा कि थोड़े दिन की बात है, फिर शहर लौट चलेंगे। वहाँ तो मैं तुम्हें मटरगश्ती करने से कभी नहीं रोकता। फिर यह दो दिन तुमसे नहीं कट सकते ?

उन्होंने उँगली उठा कर कहा—'तुमने मुझे कहीं का भी नहीं रखा ! आज तुमने यह नहीं सोचा कि तुम क्या कर रही हो ! कभी देखा था आज तक घर की किसी और औरत को उनसे बातें करते ?

मैंने दृढ़ हो कर कहा—'लेकिन वह कमरे में घुस आये थे। उस वक्त और कोई न था। वह मेरी तरफ देख रहे थे।

'देखेंगे नहीं ?' उन्होंने कहा—'तुम मुँह खुला रखोगी', तो वह जरूर देखेंगे ! आज तक किसी और घर की बूढ़ी तक ने उनके सामने अपना मुह खुला रखा है ? तुमने वह बात की है, जो हममे से किसी के भी वस की नहीं रही। घर-घर चर्चा हो रही है।

उन्होंने कहा—'बोलो ! जबाब क्यों नहीं देती ?

मैंने कहा—'तुम पागल हो गये हो ? तुम कुछ भी सोच नहीं सकते ? दुरंगी जिन्दगी बिताने वाले ढोंगी ! पुस्तकालय से सिर्फ अखबार मँगवाया था मैंने, क्योंकि इस नरक में सिवाय पढ़ने के मुझे और कुछ अच्छा नहीं लगता ! तुम मुझसे उसे भी छीन लेना चाहते हो ? मुझसे नहीं हो सकती यह गुलामी ! मैं तुम्हारी बुआ, मामी, चाची की तरह अपढ़ गँवार नहीं हूँ, जो अपने आपको तुम्हारी जूतियों की खाक समझती रहूँ।

मेरी बात पूरी भी न हो पाई थी कि मेरी पीठ हाथ और पाँव पर सड़ासड़ बेंत पड़ने लगे। मैं नहीं जानती कि मैं रोई क्यों नहीं। मैंने केवल इतना कहा—'मार ! और मार !

उनका हाथ थक गया। घृणा से बेंत फेंक दिया, और उनके मुँह से निकला—'बेशरम !'

'और मैं वैसी ही खड़ी रही।

'रात बीत गई। मैं वहीं बैठी रही। दूसरे ही दिन मैंने भैया को चिट्ठी लिख दी।'

'उन्होंने चिट्ठी भेजने में कोई बाधा नहीं दी।'

'दो दिन तक मुझे किसी ने खाने को भी नहीं पूछा।'

'सुबह उठ कर देखा, द्वार पर भाई साहब खड़े थे। उनके चेहरे पर हवाइयां उड़ रही थीं। उनको देखते ही मेरी आँखों में आंसू आ गये। बहुत रोकने का प्रयत्न करके भी मैं अपने आपको रोक न सकी।

'भैया ने कहा–'क्या हुआ, सिवो ?'

'मैंने कहा–'मैं यहां नहीं रहना चाहती।'

'आखिर क्यों ? कोई बात भी तो हो।'

'मैंने उनसे कहा–आपने मुझे कहां फेंक दिया ?'

'क्यों सूरज बाबू ने कुछ कहा ?'

'मैंने कुछ उत्तर नहीं दिया। बांह खोल कर बेंत की मार के निशान दिखा दिये।

'एक बार क्रोध से उन्होंने अपना नीचे का होंठ काट लिया। फिर सिर झुका कर कहा–'मैं समझता था कि तुम दोनों एक-दूसरे से प्रेम करते हो। तुम्हारा जीवन सुख से बीतेगा। लेकिन वह लोग कहीं अच्छे जो दुखी है किंतु दुखका अनुभव नहीं करते, क्योंकि वे गुलामी और आजदी का फर्क ही नहीं जानते। हिन्दुस्तान में अव्वल तो प्रेम के विवाह होते नहीं और होते भी हैं, तो निभ नहीं पाते, क्योंकि यह प्रेम समाज की भीषण बेड़ियों को तोड़ने में असमर्थ रह जाता है।'

'मैंने कहा—'किन्तु मैं ऐसी नहीं हूँ।'

'भैया ने सिर झुका कर कहा...'हम लड़की वाले हैं। हमें सिर झुका कर ही चलना होगा। वर्ना मैं नहीं जानता कि क्या होगा ? जो वह कहेंगे, उसी को करने में हमारा कल्याण है। अन्यथा कोई चारा नहीं।'

'मैं चुप हो गई। भैया ने फिर कहा—'पति ही स्त्री का सब कुछ है, सविता !'

'मैंने सिर उठाया। कहा—'पति ही स्त्री का सब कुछ है किन्तु वह पति पुरुष होता है। सीता जिस राम के पीछे चली थीं, वह पुरुषार्थी था। जो व्यक्ति अपनी ही रूढ़ियों में जकड़ा हुआ हाँफ रहा है, वह मेरे जीवन का आदर्श नहीं हो सकता ! किसलिये मैं अपने एकान्त सुख को इतना बड़ा बना दूँ कि मेरे

विश्वास, मेरी श्रद्धा, मेरी शक्ति एक ऐसे व्यक्ति को देवता समझ कर उसके पैरों पर जम जाय, जो स्वयं लड़खड़ा रहा हो, जो स्वयं निर्बल हो और स्त्री को केवल वासना बुझाने और खानदान की इज्जत की चक्कियों में पीसने वाली दासी और बच्चे पैदा करने मात्र की एक साधना समझता हो, जो मेरी इंसानियत को धर्म के नाम पर कुचल कर मुझ पर घृणा से हंस देना चाहता हो!'

'भैया कांप उठे। उन्होंने कहा—'तू क्या कह रही है, सविता? तेरी एक छोटी बहिन है। लोग अगर यह सब सुनेंगे, तो कहेंगे, 'अरे, यह उसी की बहिन है!'

'मैंने कहा—'किंतु मैं यहां अब नहीं रहूँगी! तुम मुझे नहीं ले जाओगे, तो मैं किसी दिन गले में फांसी लगा कर मर जाऊँगी।'

'भैया सोच में पड़ गये। उन्होंने कुछ नहीं कहा।

'मैंने कहा—अच्छा, कुछ दिन के लिये तो ले ही चलो।'

'भैया ने कहा—'अच्छी बात है। जो होना है, वह होकर रहेगा! तू यही चाहती है, तो चल तेरी मर्जी!'

'हम लोग लखनऊ आ गये। एक दिन भी नहीं रही थी वहाँ कि इलाहाबाद में एक मास्टरनी की आवश्यकता का समाचार देखा। यहाँ आ गई हूँ तबसे। स्कूल खुलने के पहले इन्टरव्यू होगी।'

मैंने देखा वह संकुचित नहीं थी। हवा में उसके बाल मुँह पर बार-बार आ जाते थे। मैंने पूछा—'तो क्या आप वहाँ लौट कर नहीं जायँगी?

सविता ने कहा—'कहाँ?'

'वहीं, गाँव, सूरज के पास!'

सविता ने दृढ़ स्वर से कहा—'नहीं, अब मैं निश्चय ही वहाँ नहीं जाऊँगी! आप सोच भी नहीं सकते कि मुझे आते

समय भी किसी ने तनिक भी स्नेह से नहीं देखा। वरन् उनके मुखों पर घृणा का विद्रूत रूप अपनी सीमा पार कर चुका था। वे लोग मुझे मार डालेंगे। मैं वहाँ कभी भी नहीं जाऊँगी!'

मैंने कहा—'इस समय आप क्रोध में हैं। आखिर सूरज से आप प्रेम करती थीं, और वह भी प्रेम करता था?'

सविता हँस दी। कहा—'आप मुझे जानते हैं। मैं आपको जानती हूँ। अगर शाम को गंगा-किनारे आप मुझे पहले देखते और आवाज देते, पर मैं आपको पहचानने से इनकार कर देती या टालू बातें करती, तो क्या आप फिर कभी मुझसे मिलने ख्वाहिश रखते?'

बात सविता ने ठीक ही कही थी। किन्तु मैंने कहा—'फिर?'

'फिर क्या?' उसने कहा—'फिर तो साफ ही है।'

मेरे मुँह से निकला—'बड़ी हिम्मत है आपमें!'

'जी, नहीं। उसने रोक कर तुरन्त उत्तर दिया—'हिम्मत से काम नहीं चलता अकेले। अगर भैया न आते, और मैं अकेली निकल पड़ती, तो जब राह में लड़के, लड़कियाँ मुझे देख कर तालीयाँ बजा-बजा कर चिल्लातीं, 'बाबू की पतुरिया सहर जा रही है!' तब सूरज बाबू मुझे शायद क्रोध के विक्षोभ में गला घोंट कर मार देते! उन्हें तो अपनी जमीन अपनी जिन्दगी की सच्चाई से भी ज्यादा प्यारी है। उनके खानदान की इज्जत धूल में मिल जाती। इसी से तो कहती हूँ, हिम्मत से ही कुछ नहीं हो सकता। अगर मैं पढ़ी-लिखी न होती, अपने खाने कमाने लायक नहीं होती तो क्या कभी ऐसी हिम्मत कर सकती थी? आदर्शों को पूरा करने के लिये उसके साधनों की ठोस बुनियाद की जरूरत है!'

"मैं सुनता रहा। सविता कहती रही—'दुनिया मुझे बदनाम करेगी, मुझे कुलटा कहेगी। किन्तु बताईये आप ही, मैं

इसके अतिरिक्त और क्या करती ? जीवन भर वही गुलामी की नफरत को ही पातिव्रत कह कर औरत को समाज में धोखा दिया गया है, अब मैं उस जाल को फाड़ कर फेंक देना चाहती हूँ !'

वह हाँफ रही थी। मैंने देखा, वह उत्तेजित हो गई थी। शायद वह यह जानना चाहती थी कि मैं उसके बारे में क्या सोच रहा था।

मैंने कहा, 'आपकी बहिन का क्या होगा ?

उसने कहा—'पढ़ी लिखी है। कोई मन का ही नहीं, विचारों का भी दृढ़ सामंजस्य मिलेगा, तब शादी कर लेगी। वर्ना कमा खायेगी। पेट की मजबूरी से ही तो स्त्री सिर भुकाने को मजबूर होती है।

'और, मैंने कहा—'आप ऐसे ही जीवन बिता देंगी ?

वह क्षण भर सोचती रही। फिर कह उठी—'नहीं, मैं उनके पीछे अपना जीवन बरबाद नहीं करूँगी क्योंकि वह मुझसे छूटते ही फिर ब्याह कर लेंगे। और मनुष्य उसी स्मृति के पीछे अपने सुखों का त्याग करता है, जिसे वह सुखदायक और पवित्र समझता है।

'तो आप विवाह कर लेंगी ?

"उसने मेरी ओर घूर कर देखा, फिर हँसी। कहा—'मैं तो सच अपने को अयोग्य नहीं समझती। समाज में क्या एक व्यक्ति भी ऐसा न खोज सकूँगी, जिसमें आत्मा का थोड़ा भी सत्य हो, साहस शेष हो। सब ही तो एकदम निर्जीव, कायर नहीं होते। समाज मुझसे भले ही घृणा करें, किन्तु मैं तो मनुष्य से घृणा नहीं करती, जो अकेली बने रहने की तपस्या का बोझ अपने कन्धों पर रख कर छट-पटाऊँ, और

उस यातना को आदर्श बना कर सत्ता स्वार्थियों को एक और मौका दूँ कि वे अपने पापों पर धूल उछाल कर उसे ढँक दें और अपनी अच्छाइयों की झूठी झलक को सबके ऊपर ला धरें।

"और मैंने देखा वह शान्त थी। कोई डर नहीं था उसे। कोई शंका नहीं थी उसके मुख पर। आज मैंने देखा कि स्त्री भी पुरुष की तरह आत्म-सम्मान की आग में तप कर आज़ादी माँग रही थी, और सारे संसार का अन्धकार भरा पाप उस पर घृणा से लांछन लगा रहा था, उसे बरबाद कर देना चाहता था, पर वह अडिग खड़ी थी।

कल्ला चुप हो गया। सिद्दी और चंदू ने भारी पलकों को उठाया। रात बहुत बीत गई थी।

सिद्दी ने कम्बल को और अच्छी तरह लपेट लिया। तीनों इस समय गंभीर थे।

कल्ला के मुख पर एक शक्ति दमक रही थी, क्योंकि उसने उस नारी की जीवित मानवता की हुंकार सुनी थी उसने नारी का वह विक्षोभ देखा था, जिसके सामने परवशता की चिता धू-धू जल रही थी।

सांझ के शिकारी !

समुद्रतीर पर वह शांत सा होटल, जिसके पावों के सामने मनोहर सिकता है दिन होने के कारण लोग सिकता पर कम चलते हैं, होटल में कम आते हैं। होटल में घुसते ही एक बड़ा कमरा है। उसमें मेज़ कुर्सियां सजी हुई हैं, जिन पर बैठ कर लोग चाय, कॉफी, पी सकते हैं। बाईं ओर एक बरामदा है। बरामदे के सामने भी सिकता है। कमरा बहुत साफ़ है। एकदम नीरव। और उस नीरवता में केवल दुबला पतला, गेहूँए रंग का कृष्णन् सूट पहने बैठा था। ऐसा प्रतीत होता था जैसे वह किसी की प्रतीक्षा कर रहा था। उसके मुख पर घबराहट भी थी स्थिरता भी, जैसे वह कोई अपनी समझ में बहुत बड़ा काम करने वाला था और इसीलिये बात खुल जाने के भय से खामोश था।

बेरर ने प्रवेश किया। ग्राहक को देख कर कहा—सर ?

कृष्णन् ने उसकी ओर बिना देखेही उत्तर दिया—'कॉफी, टोस्ट, उपमाव। ठीक, टोस्ट नहीं, उपमाव ही ले आओ।'

बेरर भीतर चला गया। उसी समय कृष्णन ने देखा द्वार पर एक निम्न श्रेणी का मुसलमान खड़ा था।

कृष्णन् ने इशारे से बुलाया। कहाः ए भाई। यहाँ ज़रा सुनो।

वह आदमी पास आगया। बोलाः जी, बाबू ?

कृष्णन् ने व्यंग से पूछा : इस होटल में सब लोग अपनी बोली भूल गये हैं ? सब... सब अंगरेजी बोलते हैं ? क्या नाम है तुम्हारा ?'

'हुजूर मुझे इशरत कहते हैं। वह तो आप लोगों का फैशन है '

कृष्णन् हँसा। कहा : अच्छा। ठीक रहे।

इशरत ने पूछा : बाबू कहाँ रहते हैं ?

'त्यागरायनगर '

'तब तो पट्नम (महानगर) में ही ?

'हाँ, हाँ, मदरास में ही।'

वेटर भीतर आगया। पहले प्याला रख दिया फिर शीशे की तश्तरी में उपमाव। और इशरत को घूर कर कहाः तू यहाँ क्या कर रहा है ? चल निकल यहाँ से।

कृष्णन ने देखा कि इशरत दबा हुआ सा कमरे के बाहर हो गया। कृष्णन् खाने लगा।

'हुजूर।'

कृष्णन् ने वेटर को देखा।

'इस बदमाश से सौ दफ़ा कह दिया यहाँ न आया कर। तेरे आने से होटल बदनाम होता है। मगर मानता ही नहीं।'

'पर आखिर बात क्या है ?' कृष्णन् ने पूछा।

'हुजूर, यह, हुजूर... ...ठीक नहीं है... दलाल है......

वेटर कहते कहते रुक गया। तीन विद्यार्थी होटल में घुस आये थे। वे एक मेज़ के चारों ओर बैठ गये

एक ने कहा : देखो जी सारंगपाणि ! हम ज्यादा देर तक यहाँ नहीं बैठ सकते।'

घबराये क्यों जाते हो यार ! अभी सब हुआ जाता है; और मुड़ कर आवाज दी—'वेटर !'

वेटर ने आगे बढ़ कर कहा : 'सर !'

सारंगपाणि ने चपलता से कहा :'चीम ! फौरन ! और फौरन से पेश्तर !'

वेटर चला गया। तीसरे लड़के अशोक ने दूसरे लड़के से कहा 'हाँ भाई श्रीनिवासन्। तो फिर क्या तय रहा ?'

'यही कि वे दोनों यहीं आते होंगे।'

'फिर भागेंगे ?'

'कहाँ भाग कर जा सकेंगे वह ?'

'क्यों,' अशोक ने पूछा—'मैसूर कैसा रहेगा। रियासत है।'

श्रीनिवासन् ने सिर हिला कर कहा : कोई बुराई नहीं।

'लेकिन,' सारंगपाणि ने टोका—'उनके लिये कोई जगह खतरे से खाली नहीं।'

'क्या मतलब ?' श्रीनिवासन् की भौं तन गई, 'अशोक को भी तो बोलने दो ?' और उसने अशोक की ओर देख कर कहा हाँ फिर ?

'रात को, अशो ने कहा, वे मेरे पास आये, सीधे कालीकट से भाग कर। मुझे तो अचरज हुआ। तुम बताओ, तुम सोच सकते थे कि उ ाँधे बालकृष्णन् में ऐसा साहस होगा ? साथ में ही कमला थी। समझ में नहीं आता उस काले पर वह रीझ कैसे गई ?

'अरे उसका क्या ? श्रीनिवासन् ने हँस कर कहा : दस नॉवेल पढ़ डाले। मार दिया कस कर कलम का हाथ। प्रेम हो गया। लगे हाथों दिमाग आस्मान पर चढ़ गया कि अब तो नई दुनिया बसायेंगे, भाग निकले।

सारंगपाणि ने व्यंग की व्यथा को समझते हुए कहा : 'आपको शायद अफ़सोस है कि आप न हुए।

सब हँस पड़े। अशोक ने कहा : रात को मैंने उसका बिस्तर ज़नाने में लगवा दिया और बालकृष्णन् नीचे सोने लगा, मगर वह तो बोली कि मैं भी नीचे ही सोऊंगी। औरतों ने जीभ काट ली शर्म हया कुछ बाकी नहीं रहा।

'अजी उसे डर था' श्रीनिवासन् ने सिर हिला कर कहा— कहीं रात को ही छोड़ कर न भाग जाये।

अशोक ने हाथ मेज़ पर मार कर कहा : बिल्कुल ! मैंने देखा था छिप कर, वह रो रहा था, वह ढाँढ़स दे रही थी।

हाथ की उंगलियां ऊपर की ओर खोल कर श्रीनिवासन् ने कहा, 'उसका क्या है ? वह तो लौट कर घर भी जा सकता है। पर वह तो नहीं घुस सकती अब ?

'फिर भी, किन्तु बात पूरी करने के पहले ही याद आ गया और सारंगपाणि ने आवाज़ दी—'बेटर !

बेटर द्वार पर दिखाई दिया। उसके हाथ में ट्रे थी। मेज़ पर उसने चाय रखदी। सारंगपाणि ने बात पूरी की : बड़ी देर लगाई तुमने ?

बेटर उत्तर दिये बिना ही चला गया।

श्रीनिवासन् ने प्यालों में चाय उँडेलते हुए कहा : डर लगता है वह बेवकूफ़ कहीं उसकी ज़िन्दगी न बिगाड़ दे।

दूध मिलाते हुए अशोक ने कहा : लेकिन डर से कुछ होता तो नहीं। इस वक्त हिम्मत की ज़रूरत है। शादी तो हो नहीं सकती।

श्रीनिवासन् चीनी डाल रहा था। चम्मच छिटक कर कुछ चीनी बिखर गई, पर उसने पूछा : क्यों ?

'ऐसा नहीं है' अशोक ने मुस्करा कर कहा : कहीं भी पकड़े जाने का डर है। और रजिस्ट्रेशन भी नहीं हो सकता क्योंकि...

'शायद लड़की छोटी है ?' सारंगपाणि ने पूछा।

'बिल्कुल।' अशोक ने कहा : वह इक्कीस की नहीं है। सिविल सर्जन कह देते हैं कि नहीं वह इक्कीस की है, पर उस के लिये रुपया खर्च करना पड़ता है सो है नहीं......

बात लम्बी थी। श्रीनिवासन् ने कहा: चाय भी पीते चलो न ?

'अरे हाँ,' दोनों ने एक साथ कहा और अपने अपने प्याले उठा लिए। एक घूँट लेकर श्रीनिवासन् ने कहा: फिर अब क्या करना है ?

'उन्हें मद्रास के बाहर कर देना है'

तीनों चुपचाप चाय पीने लगे। समस्या बहुत बड़ी थी। अपना खाली प्याला मेज पर रखते हुए श्रीनिवासन् ने आवाज़ दी: बेटर !

बेटर ने प्रवेश करके कहा: सर !'

'बिल !'

बेटर ट्रे पर चाय के प्याले आदि रख कर भीतर चला गया। अलग बैठे कृष्णन् ने ऊब कर अंगड़ाई ली। बेटर ने बिल प्लेट में लाकर पेश किया। श्रीनिवास ने दो आने अधिक रख दिये। बेटर सलाम करके लौट गया।

'अरे !' अशोक ने चौंक कर कहा : उनका तो बहुत पहले आने का वायदा था। अभी तक नहीं आये ?

'हम स्वयं आधे घंटे बाद आये हैं, कहीं वे लोग आकर चले तो नहीं गये ?'

पूछो तो।

अशोक ने अलग बैठे कृष्णन् से मुड़ कहा: जन्टलमन ! क्षमा करिये।

कृष्णन् ने ठंडे स्वर से कहा: जी।

क्या आप बताने की कृपा करेंगे कि आप यहाँ कितनी देर से बैठे हैं, यदि आप बुरा न मानें तो...

कृष्णन् ने काट कर कहा: आप पुलिस ?

'देखिये, अशोक ने हिचकिचा कर कहा: यह बात नहीं। क्या आपने एक लड़के को एक लड़की के साथ देखा था ?

'जी हाँ कृष्णन् ने कहा: जब मैं होटल में घुस रहा था। मैंने उस पर्दे के हट जाने से लड़की को देखा था। वह कपड़े ठीक कर रही थी और एक आदमी उसके पास खड़ा था .....

'जी, जी, अशोक ने संतोष से सिर हिला कर पूछा: वह लड़की गोरी थी ?

कृष्णन् ने कहा: गोरी ? वह तो थी ही गोरी! एंग्लोइंडियन।

श्रीनिवासन् ज़ोर से हँस कर कह उठा: अरे मैं भी क्या सोच रहा था कहीं बालकृष्णन् ने इतनी उतावली न की हो।

हठात् कृष्णन् ने बाहर के द्वार की ओर हाथ उठा कर कहा: देखिये वही आ रही है। अबके उसके साथ एक लड़की है।

श्रीनिवासन् ने मुड़ कर कहा: अरे यह तो डॉरोथी है। यह, यह तो...

बात पूरी नहीं हो पाई। लड़कियां आकर बैठ गई। सारंगपाणी ने उठते हुए कहाः तो फिर चला जाये। वह लोग अभी तक नहीं आये। कहीं पकड़े तो नहीं गये?

अशोक और श्रीनिवासन् ने एक साथ मिश्रित दृष्टि से देखा। और अशोक ने उठते हुए स्वीकार कियाः अच्छा चला जाये!

श्रीनिवासन् लाचार सा उठ खड़ा हुआ। उसने देखा। डॉरोथी मुस्करा रही थी।

—२—

जब वे तीनों चले गये कृष्णन् ने आवाज़ दीः वेटर!

वेटर ने प्रवेश किया।

'कौन थे ये लोग?'

वृद्ध का मुख गंभीर हो गया। उसने विरक्त स्वर से कहाः सांझ के शिकारी। दुनिया को बेवकूफ समझते हैं। एक औरत भगादी है उस पर इतना घमंड। समाज... समाज... सुधार! सुधार! दिन भर लड़कियों का चक्कर, उसने यह कहा, उसने वह कहा. किसी की आँख अच्छी है किसी के कान अच्छे हैं, बहुत हुआ ब्रिज का जोर मारा, और घर जाकर माँ बाप को उल्लु बनाया। और क्या? हराम की मिलता है जो?

कृष्णन् ने हँस कर कहाः तुम बूढ़े हो न? तभी तुम्हें यह बातें नहीं सुहातीं। एक कप काफ़ी और लादो।

'यस सर।' वेटर के स्वर में हठात् दूसरी गंभीरता आगई। वह चला गया।

उस समय एक लड़की ने कहाः मारगरेट! ओह डियर मी! मैं बहुत थक गई हूँ।

मारगरेट ने मुस्करा कर कहाः तुम्हारा दोस्त! मुझे तो उसका यकीन नहीं...

'उससे पहला तो... उफ़...उफ़....'

'वह तो जानवर था।'

'वह सीधा है'

'बहुत पैसा है इसके पास। शादी क्यों नहीं कर लेती?'

'निभेगी नहीं; ' डॉरोथी ने उदासी से कहा—'यह सिड़ी भी तो है ......'

'क्यों?' मारगेरेट ने उत्सुकता से पूछा—'झगड़ा हुआ है कभी?'

'हो सकता है।'

'चुप चुप,' मारगेरेट ने धीरे से कहा—'वह आदमी सुन रहा है।'

डॉरोथी हँसी। कहा: यह मुझे कपड़े ठीक करते देख चुका है। उससे क्या छिपाना?

उठ कर उसके पास चली गई। मारगेरेट ने घबरा कर आवाज दी: डॉरोथी!

किंतु डॉरोथी ने नहीं सुना। उसने कृष्णन् से कहा: जन्टलमन! आप हमारी बातें सुन रहे थे?

कृष्णन् ने अचकचा कर देखा और उसके मुँह से निकल गया: ओह नो। लेडी नो!

वेटर कॉफी ले आया था।

'आप पीजिये।'

'ओह, नो थैंक्स।' कहती हुई डॉरोथी वहीं बैठ गई। कृष्णन् ने कहा: 'वेटर! दो प्याले और ले आओ!' मुड़ कर डॉरोथी से कहा: 'उन्हें भी बुला लीजिये न?

डॉरोथी ने कहा: मारगेरेट!

मारगेरेट आकर पास बैठ गई। वेटर दो प्याले और ले आया। उसके मुख पर असंतोष था। जब वह चला गया कृष्णन् ने कहा : लोग कॉफी काँच के गिलासों में पीते हैं मुझे वह पसंद नहीं।' और मारगेरेट से कहा : आप कुछ नाराज लगता हैं। पीजिये ?

'नहीं तो ' मारगेरेट ने कहा—'आपको यह शक क्यों हुआ मैं सोच रही थी कि जरा बाज़ार जाती।

'चलियेगा। मोटर बाहर खड़ी है।

'गुड; ' डॉरोथी ने स्वीकार किया, 'तुम जाना मारगेरेट लेकिन मैं नहीं ज़ा सकूँगी। मुझे काम है।'

मारगेरेट ने कॉफी पीते हुए कहा : आप पहली बार इधर आये हैं ? कल आइयेगा ?

'क्यों ?' कृष्णन् ने उत्सुकता से पूछा।

'मारगेरेट,' डॉरोथी ने ऊबे हुए स्वर से कहा–तुम्हें सदा नये आदमियों को सिनमा दिखाने की सूझती है।

'तो आज ही चलिये न ? ' कृष्णन् ने स्वर का आनंद छिपाते हुए कहा—'वहीं से चलेंगे।'

'ममी, नाराज होंगी।' मारगेरेट ने अबोध आँखें उठाते हुए कहा।

ओह ! कोई बात नहीं। मैं समझा दूँगी ' डॉरोथी ने कहा एक शरीफ़ आदमी के साथ जाने में क्या हर्ज है ?

'तो चलिये न ? ' मारगेरेट उठ खड़ी हुई।

'लेकिन, 'कृष्णन् ने कहा–'बिल तो मँगा लूँ ?

मैं बाहर ही दे दूँगी।'

कृष्णन् का हृदय गद्गद होगया। उसने मारगेरेट के साथ बाहर चलते हुए डॉरोथी की ओर मुड़ कर कहा : बाई, बाई......

डॉरोथी ने हाथ उठा कर हिलाया। कुछ देर वह चुपचाप सिगरेट जला कर धूंआ छोड़ती रही। बगल के द्वार से इशरत घुस आया। उसने पास आकर कहा : मिसी बाबा !'

डॉरोथी का ध्यान टूटा। उसने कहा : मारगेरेट तो गई। उसमें अभी बड़ी चकाचौंध है।

'आप भी तो.......

इशरत की बात को काट कर डॉरोथी ने डाट कर कहा : 'चुप रहो बेवकूफ ! क्या है ?

'मिसी बाबा ! इस बाबू का पता बताया है। इनाम !

'यू डॉग ! डॉरोथी ने एक रुपया बटुए में से निकाल कर मेज़ पर डाल दिया। इशरत ने रुपया उठा कर सलाम किया। डारोथी उठ खड़ी हुई। इशरत ने धीरे से कहा–हुजूर !

क्या है ?'

'हुजूर' उसने हिचकिचा कर कहा : 'एक अर्ज़ है।'

डॉरोथी जैसे समझ गई पर अनजान बन कर कहा: क्या है ? बोलो।'

'हुजूर, कसूर माफ हो।'

बोलो। क्या बात है ? और पैसा चाहिये ?'

'हुजूर, पैसे की क्या कमी है ? आपकी खिदमत में किसी चीज की ज़रूरत नहीं पड़ती।'

'तो फिर कहता क्यों नहीं ?

'हुजूर डर लगता है। आप नाराज हो जायेंगी।'

'ओह, तो ! तुम हमारा आदमी है।'

'हुजूर ! इशरत ने एक बार निगाह भर कर डॉरोथी को देखा। फिर आँखें झुक गईं—'आप बहुत खूबसूरत हैं।'

हुजूर, साफ कपड़े पहन कर यह काम करने में शर्म लगती है। मैं उस वक्त साफ कपड़े पहन कर आऊंगा।

डॉरोथी हँस दी। जैसे वह सोच रही थी।

'हुजूर मैं आपका गुलाम हूँ।'

डॉरोथी एक बार मुस्कराई फिर चली गई। इशरत गद्गद सा खड़ा रहा। पगचाप सुन कर उसने आँखें उठाईं। एक घबराई सी लड़की ने प्रवेश किया। इशरत सावधान होगया।

'तुमने यहाँ' लड़की ने हांफते हुए कहाः 'एक आदमी को देखा ?'

'बीबी ! यहाँ आदमियों के अलावा सिर्फ औरतें आती हैं। आप किसे पूछ रही हैं ?'

'मेरा मतलब बालकृष्णन् से है। वह मुझ से रास्ते में कह कर गया था कि अभी आता हूँ। सो अभीतक नहीं आया।'

'तो वह अब आवेगा भी नहीं।' इशरत ने सिर हिला कर कहा—'वह आपको छोड़कर भाग गया है। कौन था ?'

'वह मेरा पति होने वाला था।' लड़की का मुख विवर्ण हो चला था।'

'होने को तो मैं भी जाने क्या होने वाला था। लेकिन आज कुछ भी नहीं हूं।'

हाय ! अब मेरा क्या होगा' न इधर की रही, न उधर की, मेरा तो कहीं भी कोई न रहा······

लड़की बैठ कर रोने लगी। उसके मुँह से अस्फुट शब्द फूट रहे थे जिन्हें शायद दाब सकने में वह अब असमर्थ होगई थी—अब मैं दुनिया को अपना मुँह कैसे दिखाऊंगी ? कहां जायगी तू कमला ?'

वेटर ने आवाज सुनकर प्रवेश किया। कठोर दृष्टि से इशरत को घूरते हुए कहाः इशरत ? क्यों छेड़ रहा है, शरीफ औरत को ? होटल की इज्जत का सवाल है।'

'मैं क्या कर रहा हूँ' इशरत ने द्वार की ओर हटते हुए कहा—'तुम जानो, तुम्हारा होटल। बीबी कह रहीं थी कि अब वे कहीं की नहीं रहीं। बेकार घर छोड़ कर भाग आई।

'भाग आई ?' वेटर ने चौंक कर कहा।

'शरीफ औरत है......' इशरत के मुख पर मुस्कराहट कांप उठी।

'भाग जा बदमाश' वेटर ने तड़प कर कहा–क्या देख रहा है खड़ा खड़ा। रंडियों का दलाल। साले तू सड़ सड़ कर मरेगा।

'तेरी तरह नौकर तो नहीं हूं ?' इशरत ने ताना मारा।

'निकल यहाँ से।' वेटर ने फूत्कार किया।

'अरे जा तो रहा हूँ बूढ़े। क्यों खाये जा रहा है।'

लड़की को घूरते हुए वह चला गया। वेटर के होंठ घृणा से काँप उठे। उस नीरवता में लड़की का रुदन गूंज उठा।

—२—

वेटर ने लड़की के पास जाकर पूछा: 'तुम कौन हो ?'

'मैं, मैं पापिनी हूं,' लड़की ने रोते हुए कहा, हाय मैं कहीं की भी नहीं रही। क्यों नहीं फट जाती यह धरती ? जो औरत का जनम लेकर अब भी जी रही हूँ...

वेटर किंकर्त्तव्यविमूढ़ सा खड़ा रहा। लड़की रोती रही। इसी समय कृष्णन् घबराया सा भीतर घुस आया।

'वेटर !' उसने तेज़ी से कहा।

'सर ?'

'हमारा मनीबेग कहां है ?' एक तीव्र दृष्टि ने अपनी कुर्सी के उपर नीचे देखा और मुड़ कर कहा: कहाँ है बताओ ?'

वेटर चुप खड़ा रहा। जैसे कोई बड़ी बात नहीं हुई। फिर धीरज से पूछा : आपने बाहर दाम नहीं दिये ?

'बिल तो उस लड़की ने चुकाया था न ? वह लड़की रास्ते में एक जरूरी काम बताकर मुझे छोड़कर मोटर से उतर गई। दूर पहुँच कर मैंने जेब में हाथ डालकर देखा...पर्स नहीं था..' स्वर भिंच गया। वेटर ने मुस्करा कर पूछा : वह लड़की कौन था ? क्या आपकी कोई होने वाली बीबी...

कृष्णन् चिल्ला उठा—चुप रहो। बेवकूफ़।

'बाबू,' वेटर ने हाथ से इशारा करके कहा—'बेवकूफ़ तो वह आपको बना गई।

'बना गई ? कृष्णन् ने भौं सिकोड़ कर कहा—'तुम सब बद-माश हो। तुमने होटल के नाम पर चकला खोल रखा है। मैं यह कभी बर्दाश्त नहीं कर सकता। कम्पनी ने मुझे हजारों रुपया औरतों के पीछे फूंकने को नहीं दिया था। आज तक कई लड़कियां मिलीं, लेकिन ऐसी कोई नहीं थी।

वेटर ने मुस्करा कर फिर पूछा : 'आपको उसने कुछ नहीं दिया ?

'दिया ? कृष्णन् ने गुर्रा कर कहा-क्या देती वह मुझे ? रंडी किसी को क्या दे सकती है ? उसमें नौ सौ रुपये थे, नौ सौ।

स्वर में दृढ़ता थी। वेटर ने चौंक कर दुहराया-'नौ सौ !

'तुम सोच भी नहीं सकते, क्यों ? कृष्णन् ने होंठ चबा कर कहा—'तुम होते तो तीन जगह गश खाते और अभी तक तो दम तोड़ दिया होता। भिखमंगे। लेकिन मैं शादी करने वाला हूँ। आज मुझे एक नेकलेस खरीदने जाना था। और अब मुझसे मनीबेग खोगया है। क्या कहूँगा मैं चंद्रमणि से ? कितनी खुश होती वह उस नेकलेस को पाकर....

वेटर को जैसे होश आया। उसने कहा : सर आप पुलिस...

कृष्णन् ने काट कर पूछा : क्या वह लड़की यहीं की रहने वाली है ?

वेटर ने निराश स्वर से कहा : 'मुझे नहीं मालूम।'

कृष्णन् कराह उठा 'उफ़ ! जाऊं ! कहाँ जाऊं ? क्या करूँ ? कुछ भी समझ में नहीं आता।'

लड़की ने सिर उठा कर कहा : आपका तो सिर्फ़ रुपया खोया है, लेकिन मेरा तो सब कुछ खोगया है....

'आपका ? क्या खोगया आपका ? आपका शुभ नाम ?'

'कमला।' लड़की ने कठिनता से कहा।

'कमला !' कृष्णन् चौंका। फिर पूछा—'आपका दोस्त कहाँ है ?

'वह छोड़ गया,' बाँध टूट गया। लड़की फिर रोने लगी।

'आप उस बदमाश के साथ भाग क्यों आई ? कृष्णन् ने निरुक्त स्वर से कहा-'मुझे आप से हमदर्दी है। लेकिन मैं आपकी कोई मदद भी तो नहीं कर सकता ? आप सचमुच नादान हैं। आपने अपने ही पैरों में कुल्हाड़ी नहीं मारी, अपने मां बाप की इज्जत खाक में मिलादी....

कमला ने हाथों में ग्लानि से मुँह छिपा लिया। 'मैं क्या करूँ ?' वह रोते हुए कह उठी—'वह बड़ी बड़ी बातें करता था' एकदम धोखा दे गया....

'मैं अपना भोगूँ, आप अपना भोगिये।' कृष्णन् वेग से चला गया। कमला ने अत्यंत करुण कंठ से कहा : चला गया। यह तक न पूछा कि क्या करेगी। कितना निष्ठुर है यह संसार ! कोई सहारा नहीं, कोई ठिकाना नहीं...

वेटर ने धीरे से कहा—बीबी !

वेटर ?

'बीबी,' वेटर ने उपेक्षा से कहा—'यहाँ पुलिस आसकती है। आप चली जाएं तो अच्छा हो।

'पुलिस !!' कमला भय से कांप उठी। 'लेकिन मैं कहाँ जाऊं वेटर ? मेरा तो कोई नहीं है।'

'आप अभी बच्ची हैं। घर लौट जाइये। मां बाप कैसे भी हों। आखिर मां बाप हैं। वैसे काम तो आपने ऐसा किया है कि गला घोंट कर मार डालना चाहिये।'

वृद्ध का स्वर कांप उठा। लड़की ने रोते हुए ही कहा - हाँ मैंने पाप किया है। पर पाप तो सब ही करते हैं। फिर... फिर मुझे ही क्षमा नहीं किया जा सकता ?'

'आप औरत हैं, वृद्ध का स्वर कठोर हो गया, 'और औरत का पाप कोई क्षमा नहीं करता। औरत की जात ही अगर ढंग से नहीं रहेगी तो मर्दों का क्या होगा ?'

'तो जाऊँ ?' कमला ने आर्द्र कंठ से कहा—'क्या कहूँ घर जाकर ? वेटर तुम बूढ़े हो। तुम मेरे बाप के बराबर हो। घर कैसे जाऊँ ? वे लोग मुझे मारते थे। यह देखो...वेटर...यह देखो तुम समझते हो वे लोग आदमी हैं ?

वृद्ध ने देखा। हाथों पर नील पड़ी थी। उसने धीरे से कहा : लेकिन तुम्हारी मां, फिर भी तुम्हारी मां है ?'

'मां', मैं नहीं जानती संसार में सब मां को इतना अच्छा क्यों मानते हैं। मैं तो अपनी मां को फूटी आँखों भी नहीं सुहाती। मेरे मरने से शायद उसे जितनी खुशी होगी उतनी और किसी चीज़ से नहीं।'

'वह तुम्हारी असली मां है।'

'नहीं ' वह तो देवी थी। मुझे बहुत प्यार करती थी। यह मेरी दूसरी माँ है।'

वृद्ध चुप होकर सोचने लगा। लड़की हाथों में मुँह छिपाये भीतर ही भीतर सिसकने लगी। एकाएक द्वार पर कोई दिखाई दिया। वृद्ध उधर ही चला। अशोक और सारंगपाणि घबराये हुए भीतर घुस आये। उनके होंठ सूख रहे थे।

' क्या फ़ायदा ऐसे प्रेम से ' अशोक ने सारंगपाणि को बैठते हुए देखकर कुर्सी खींचकर उत्तेजित स्वर से कहा: न आप रहा न दूसरों को ही कुछ दे सका। क्या कहेगी अब उसकी माँ?

' मरना ही था तो, 'सारंगपाणि ने भौं उठाकर कहा कमबख्त ने ऐसी हिम्मत ही क्यों की? तब तो आँखों में ऐसे डोरे पड़े कि सब कुछ गुलाबी दिखने लगा?

' कोई बात हुई! एक लड़की भगा लाये। जब हिम्मत नहीं हुई तो उसे कहीं छोड़कर मोटर के नीचे गिरकर आत्महत्या करली। बेटर! चाय!'

बेटर भीतर चला गया।

'तुम उसकी लाश के पास भी नहीं गये?'

'अजी जाओ। ऐसे कायर के पास जाना तो क्या उसको देखना भी प्रेम जैसी पवित्र वस्तु का अपमान करना है...

अशोक का मुख विकृत होगया। सारंगपाणि ने सोचते हुए कहा: प्रेम वस्तु तो नहीं अशोक। एक भावना अवश्य हो सकती है।

'और अपना एक उदाहरण और छोड़ गये?'

'सारा अपराध तो बालकृष्णन् का नहीं। कुछ तो कमला ने ऐसा अवश्य किया होगा। ऐसी लड़कियां जो प्रेम का स्वाँग

करती हैं, गोली मार देने क़ाबिल होती हैं, लेकिन अशोक ! बालकृष्णन् कायर था, बिल्कुल कायर

अशोक ने दृढ़ता से पूरा किया—परले सिरे का।

अपना नाम सुन कर लड़की ने सिर उठाया। अशोक कहता गया : कमला के साथ जो उसने किया है, वह बिल्कुल अनुचित है। अब वह लड़की कहाँ रहेगी ?

एकाएक सारंगपाणि लड़की को देख कर चिल्ला उठा : कमला तुम यहाँ भी ? क्या एक की हत्या से मन नहीं भरा ? भर भरके उसके कान, तुमने माँ बाप का इकलौता बेटा उनसे छुड़वा दिया और अब उसका सर्वनाश करके यहाँ रोने का बहाना कर रही हो ?

लड़की के नेत्र गम से फट गये। उसने कहा : क्य क्या.... वे....।

अशोक ने संवेदना से कहा : मोटर के नीचे जाकर दब गया।

लड़की जोर से चिल्ला पड़ी-हाय ! मेरे भगवान् ! यह तूने क्या किया ? राह की भिखारिन बना दिया मुझे। मर गये ? सच कहो, तुम झूँठ तो नहीं कहते ?'

झूँठ नहीं कमला. ' अशोक ने उदास स्वर से कहा—' मैं ठीक कह रहा हूँ। तुम्हारा होने वाला पति मर चुका है।

और सारंगपाणि ने कठोर स्वर से कहा : मर चुका है वह जो तुम्हारे पीछे कुछ भूल कर अंधा हो गया था। जिसने उनकी परवाह की जिन्होंने अपना पेट काट कर उसे इतने दिन तक पाला था।

'चुप रहो ', लड़की चिल्ला उठी-'मैं पागल हो जाऊँगी। वह नहीं मर सकते, वह इतने कायर नहीं हो सकते। उन्होंने कहा था वे जीवन भर मेरा साथ देंगे... .. मर गये ? मैं शादी से पहले ही

विधवा हो गई हूँ ? मेरा कोई नहीं ? सारा संसार.... .... मेरे दिल में आग लग रही है.... मैं नहीं, मैं नहीं..... कितना !...... कितना !.......

कमला मूर्छित होकर गिर गई। अशोक और सारंगपाणि विस्मित से खड़े हो गये। प्रवेश करके वेटर ने धीरे से कहा: सर, मैं बूढ़ा हूँ ... अगर आप बुरा न माने तो यहाँ से चले जाएँ।

'क्यों ?' अशोक ने चौंक कर पूछा।

यहाँ पुलिस आने वाली है।'

'पुलिस !!! दोनों बोल उठे।

'जी !' वेटर ने सिर झुका लिया।

'चलो अशोक' सारंगपाणि ने घबराये स्वर से कहा: जो होना था सो गया। अब क्या होगा ? बेकार की इल्लत में पड़ने से फ़ायदा ?'

'लेकिन कमला ?' अशोक ने पूछा।

'एक तो मर ही चुका। अब क्या दो को जेल भी जाना चाहिये ? चलो। यहाँ रह कर क्या होगा ?'

अशोक उठ खड़ा हुआ। वेटर ने टोक कर कहा: सर ! आपने चाय का आर्डर दिया था। चाय तैयार है। ठंडी हो रही है।

सारंगपाणि ने जल्दी में एक रुपया उसके हाथ पर रखते हुए कहा: आज सब ठंडा हो रहा है वेटर। आदमी के भीतर की यह गर्मी ही सारी आफ़तों की जड़ है .....

वेटर ने रुपया मुट्ठी में दबा कर सलाम किया। दोनों चले गये। वेटर देर तक मूर्छित कमला को देखता रहा फिर भीतर चला गया।

जब काफ़ी देर बाद कमला को होश आया उसने इधर उधर देख कर करुण स्वर से कहा: कोई नहीं ! इस अबला की रक्षा के लिये कोई नहीं ?

उसने सुना : मेरे साथ चलो। बे इज़्ज़त ज़िंदगी को इज़्ज़त के धोखे में बिता दोगी ..... मैं सिर्फ़ इतना कर सकता हूँ ......

देखा। द्वार पर इशरत खड़ा था।

ऐयाश मुर्दे.

फकीर चुपचाप चला जा रहा था। यमुना में पानी भयंकर वेग से घोर नाद करता हुआ बह रहा था। आकाश में रंतिया रंग छाया हुआ था। शाह के मजार पर रुक कर फकीर बैठ गया। दूर कहीं 'अल्लाहो अकबर, अल्लाहो अकबर' का शब्द गूंज उठा। उसके बाद 'जल्लइशान' या अल्लाह तेरा नाम सच्चा है का दूसरा गंभीर, लहराता, विनावित स्वर सुनाई पड़ा। शब्द टकरा कर यमुना की भीषण खादरों में लय हो गया और समीरण का तीव्र निश्वास हरे-भरे पेड़ों और झाड़ियों में खेल उठा। फकीर ने सुना, कोई कह रहा था—दुनिया अजीब है और आदमी उससे भी ज्यादा अजीब! कल का शाहंशाह आज धूल है, कल की मलका मुअज्जमा आज साढ़े तीन हाथ के महल में बन्द है। वह नूरजहां जिसके इशारों पर दुनिया हिलती थी, रेगिस्तान की वह अनाथ बालिका, आज ज़मीन में क़ैद है। कोई उसे छुड़ा नहीं सकता मर्जिये अल्लाह।

फ़कीर के हृदय में एक अशांति जाग उठी। दुनिया दौड़ सी लगाती चली जा रही है। लड़ती, झगड़ती, लेकिन कोई चैन लेने का नाम नहीं लेता। परवर्दिगार! तेरी यही मर्ज़ी है। तू नहीं चाहता वह खुश हो। खुश होकर शायद यह नाचीज़ तुझे भूल जायगा। इसीलिये तो तूने इतने दुख, इतने दर्द दुनिया में फैला दिये हैं!

दो तीन औरतें बुर्का ओढ़े आईं और मज़ार की परिक्रमा करके दिया जला कर, कुछ मिठाई रख कर ठहर गईं। आड़ में से निकल बूढ़े रहमत फ़कीर ने उनके सर पर हाथ रखकर उन्हें दुआ दी। औरतें चली गईं। बूढ़ा रहमत नमाज़ पढ़ने लगा।

फ़कीर उसी तरह चुप बैठा रहा। दूर एक डोंगी चली जा रही थी। कोई आदमी उसे खे रहा था, और सामने एक सुन्दर-सी स्त्री बैठी थी। फ़कीर ने मुंह फेर लिया। बूढ़ा रहमत नमाज़ समाप्त कर चुका था। फ़कीर ने देखा, रहमत के मुख पर दिव्य ज्योति उतर आई थी। उसने फिर भी कुछ नहीं कहा। बूढ़े ने खाँस कर कहा—मेरे अज़ीज़! तू जवानी में ही ज़िंदगी से क्यों मुंह मोड़ उठा?

फ़कीर ने धीरे से कुछ कहा। बूढ़ा उसे सुन नहीं सका।

रहमत ने फिर कहा—तू पाक परवर्दिगार की गोद में आ गया है। मैं कहता हूँ कि अभी से इस राह पर न आ, क्योंकि जवानी दीवानी है। फिसल जाने पर खुदा का दिया लिबास बदनाम हो जाता है। देख वह नूर का जलवा....

बूढ़े ने फुर्ती से हाथ का इशारा किया। फ़कीर चुप बैठा रहा। हिला नहीं। बूढ़े ने कहा—देखा नहीं नादान?

फ़कीर ने कहा—रसूले खुदा मज़ाक करना पसंद नहीं करते। नूर क्या है? यह दुनिया खुद नूर है।

बूढ़े ने कहा—शाबाश ! इस मज़ार पर मुझे औरतों और बच्चों को गंडे तावीज़ देते हुए बरसों हो गये, लेकिन मर खेले सादुल्ला और रज्ज़ाक ने ऐसी बात कभी भी नहीं कही। यहां हर तरह की औरत आती है, मनौती मानती है, दुआ करती है, लेकिन वे दोनों कभी पाक बातें नहीं करते। तू कौन था।

फ़कीर ने कहा—मैं एक रफ़ूगर का बेटा हूँ। घर में कोई नहीं बचा, दिल उचट गया। तभी से फ़कीर हूँ। जामा मस्जिद की छाया में सोता हूँ, राह चलते मुझे खाने को दे जाते हैं।

रहमत ने कहा—चल, अब तू यहाँ रहा कर और खैरात किया कर।

फ़कीर ने सुना और देखा की बूढ़ा रहमत गाता हुआ एक ओर चल पड़ा। फ़कीर सुनता रहा और फिर वहीं लेट गया।

बूढ़े का गाना अब भी सुनाई दे रहा था—अगर तुझे नाज़ है तो सुन कि महल आज वीरान खंडहर बने पड़े हैं। हमने राजा और भिखारी को मरघट में साथ २ जलते हुए देखा है। पागल ! आग से खेलकर कब तक बचा पायेगा ? यह मेला केवल दो सांझों का है नादान, यह बुखार भी उतर जायगा।

बुढ़ापे की वह करुण भर्राहट धीरे धीरे दूर होती होती शून्य में लय हो गई। फ़कीर ऊंघने लगा।

२

रज्ज़ाक ने एक बार सादुल्ला की तरफ आँख मारी और फ़कीर से कहा—अमाँ तुम तो एकदम सांई बन गये। इतने दिनों में तो अल्लाह-क़सम फ़रिश्ते भी बोल पड़ते।

सादुल्ला ने टोक कर कहा—चुप बे। हां तो नहीं। सुनाने दे उन्हें।

फ़कीर ने कहा—तुम दोनों को हमेशा मज़ाक सूझता है !

सादुल्ला ने कहा—आप कह रहे थे, आपकी वालदा बड़ी अच्छी हैं। फिर आप उनके पास तो कभी नहीं जाते।

फ़कीर ने उत्तर दिया—क्या जाऊं ? दुनिया में जितना पैर रखोगे उतना ही फँसोगे। दूर ही दूर रहना अच्छा है। वालिद ने मुझे रफू का काम सिखाया था, मगर उनके गाहक हमेशा कहते थे—मियाँ क्या रफू किया। यह तो सब फट चला? वालिद हँस कर कहते थे— अरे बाबू साहब, रफूगर तभी तो दर्ज़ी से कम समझा जाता है, वर्ना आप भी नया ही न सिलवा लेते ?

रज्ज़ाक ठठा कर हँस पड़ा। उसने कहा—अल्लाह क़सम ! क्या बात कही है। यह न होता तो क्या हमारे पुराने पीर तुम्हें गद्दी दे कर जाते ? भला करे उसका जिसने तुम्हारे आने के लिये यह रास्ता दिखाया। आज से हम तुम्हारे गुलाम हैं।

फ़कीर के होठों पर एक फीकी सी मुस्कराहट तैर गई। रज्ज़ाक और सादुल्ला मज़ार के पीछे की ओर जाकर सोने लगे। फ़कीर चुपचाप बैठा रहा।

एक औरत आकर कुछ दुआ मांगने लगी। उसने अपना मुंह खोल दिया। फ़कीर ने देखा। उसके गोरे मुंह पर काली ज़ुल्फें कांप रही थीं। फ़कीर का दम घुटने लगा। औरत दुआ मांग कर चली गई। फ़कीर इस औरत को आज तीन दिन से इसी तरह आते देख रहा था। वह आकर कुछ दुआ मांगती और चली जाती। फ़कीर प्रायः निर्विकार सा बैठा रहता। किन्तु आज उसका मन हिल उठा। जैसे शमा की लौ हिलते ही चारों तरफ का अंधेरा हिल कर उसे खाने दौड़ता है, उसी प्रकार आज उसके मन में वासना गूंज उठी। फ़कीर उसे देखता

रहा, तब तक, जब तक की वह दूर झाड़ियों के पार नहीं हो गई।

उसके बाद वह उद्विग्न सा टहलने लगा। उसके हृदय में बेचैनी सी भर गई। उसने बैठ कर वहीं नमाज़ पढ़नी शुरू कर दी।

३

फ़क़ीर को देख कर उस स्त्री ने बुर्का मुंह पर खींच लिया वह एकदम सकपका गई। फ़क़ीर ने गंभीर स्वर में पूछा—तू क्यों आती है यहां रोज़?

औरत ने धीमे स्वर में कहा—बाबा! मनौती मानती हूँ।

फ़क़ीर ने पूछा—किस लिये दुआ करती है तू?

औरत ने उत्तर दिया—बाबा। मैं औलाद चाहती हूँ, मेरे कोई औलाद नहीं होती।

'औलाद'? फ़क़ीर ने बैठते हुए कहा, 'औलाद के लिये किस्मत चाहिये।'

'मैंने बड़ी मनौतियाँ मानीं? दर्जनों कब्रों पर दीपक जलाए, ताज़ियों का साया किया, पीरों के मज़ारों पर लोहबान दिया। मगर कुछ भी नहीं हुआ। कल्लन की मां ने कहा था कि शाह के मज़ार जा, वहां एक फ़क़ीर है जो गीली मुल्तानी में आग लगा दें, पानी को पत्थर कर दें।'

'इस मज़ार पर तो मैं हूँ।' फ़क़ीर ने सिर उठा कर कहा, 'लेकिन मैं तो कभी गंड तावीज़ नहीं बांटता?'

'आप नहीं जानते?' स्त्री ने उत्सुकता से पूछा।

फ़क़ीर का दिल धड़क उठा। उसने कहा—जानता? जा जा, अपने घर जा। यहां कोई ऐसा काम नहीं होता। समझी?

अल्लाह को दुआ कर। अपनी अपनी किस्मत ! या परवर्दिगार !

उसने ध्यान में मग्न होकर आँखें बंद करलीं। स्त्री मन ही मन प्रसन्न हो गई। उसने आगे बढ़ कर फ़क़ीर के पैर पकड़ लिये। फ़क़ीर ने कहा—क्या है ? तू गई नहीं ?

औरत ने घिघिया कर कहा—आप मालिक हैं, अगर आप अपने बंदों पर रहम नहीं खायेंगे तो हमारा, हम गरीबों का, और कौन है ?

फ़क़ीर देखता रहा। औरत फिर कहने लगी-क़सम है मेरे सिर की मेरे रसूल! वह तो चुड़ैल मुंतो है जो मेरे मरद पर डोरे डाल रही है। मैं कहीं की न रहूँगी मेरे मालिक ! अगर मेरे बच्चा नहीं हुआ वह मुझे छोड़ कर मुंतो को बसा लेगा। फिर तो यह एक वक़्त की रोटी भी न मिलेगी। आप पर खुदा का हाथ है; हम अभागों पर उसका साया पड़ जाय तो सारी तक़लीफ़ें मिट जायँ।

फ़क़ीर फिर भी चुप रहा। वह कुछ सोचने लगा। पाप और पुण्य का भीषण संघर्ष उसके हृदय में उथल—पुथल मचा रहा था। उसने सिर उठा कर देखा, स्त्री की आँखों में आँसू छलक आये थे। फ़क़ीर ने गंभीर स्वर में कहा—तो दिया-बत्ती आ जाना।

स्त्री सिर झुका कर चली गई। फ़क़ीर बौखला सा इधर उधर घूमने लगा। मज़ार के चारों तरफ चक्कर लगा कर देखा, सादुल्ला और रज्ज़ाक कोई भी वहां नहीं था। उसने संतोष से एक लम्बी सांस ली और फिर वहीं लौट आया।

४

रात हो गई। चारों ओर अन्धकार छा गया। फ़क़ीर ने फूंक

मार कर मज़ार पर जलते चिराग को बुझा दिया। हवा धीरे धीरे कांपती हुई भाग रही थी। आसमान में अनेक तारे निकल आये थे। बसंती अंधकार में यौवन की सुलगन कूक उठी थी। फ़कीर आतुर सा देख रहा था। एकाएक वह उठ खड़ा हुआ। स्त्री सामने खड़ी थी। फ़कीर अंधकार में उसको घूरने लगा। स्त्री ने कहा—बाबा ! मैं आ गई हूँ।

फ़कीर ने धीरे से कहा—यहाँ बैठ कर दुआ माँग !

स्त्री घुटने के बल बैठ गई और प्रार्थना करने लगी। फ़कीर देखता रहा। जब वह उठ खड़ी हुई, फकीर ने कहा - अब यह बुर्क़ा उतार दे। अल्लाह चाहेगा तो तू जल्द ही माँ हो जायगी।

स्त्री का मन पुलक उठा। उसने निःशंक होकर बुर्का उतार दिया। फ़कीर ने देखा, बुर्क़ा एक कफ़न था जिसमें उसे जिन्दा ही लपेट दिया गया था। भीतर वह केवल कुर्ता और पाजामा पहने थी। फ़कीर ने कहा—उधर चल।

स्त्री कुछ भी नहीं समझी। वह फ़कीर के पीछे-पीछे मज़ार के पीछे चली गई। सड़क ओट में आ गई।

अंधकार में सहसा फ़कीर ने उसका हाथ पकड़ लिया। स्त्री काँप उठी। उसने भर्राये स्वर से कहा— आप साईं। आप ?

फ़कीर पागल हो रहा था। उसने उसे अपनी ओर खींच कर उसे अपने शरीर से लगा कर भींच लिया। स्त्री छटपटाने लगी। उसके मुँह से निकला - मैं तुम्हारी बेटी हूँ बाबा! आप क्या कर रहे हो ?

फ़कीर ने कुछ नहीं कहा। वह पशु सा उन्मत्त हो गया था। स्त्री ज़ोर से चिल्ला उठी और दोनों हाथों से उसने फ़कीर के मुंह को नोंच लिया फ़कीर उसे लेकर पृथ्वी पर गिर गया।

इसी समय पास ही में पैरों की आहट हुई। किसी ने जोर से हँस कर कहा-अबे रज्ज़ाक ! रात तो ऐसी है कि बजार चलते ! यह। क्या है कमबख़्त !

फ़क़ीर ने सुना। स्त्री चिल्ला उठी-बचाओ ! बचाओ ! यह मरदुआ मुझे...

फ़क़ीर ने जोर से उसका मुँह दाब दिया। स्त्री की आवाज घुट गई। पगध्वनी जल्दी-जल्दी पास आने लगी। फ़क़ीर ने देखा और भय से वह काँप उठा। पलक मारते वह पृथ्वी पर से उठा और मज़ार पर चढ़कर कूद गया।

स्त्री ने उठकर देखा, उसके कुर्ते के बटन टूट गये थे और जगह-जगह से फट गया था, जिसके भीतर से उसका गोरा बदन झाँक रहा था और दोनों तरफ दो आदमी कुत्तों की तरह उसे घूर रहे थे। वह बड़े ज़ोर से चिल्ला उठी किन्तु उसकी आवाज़ निर्जन से टकरा कर विलीन हो गई। सादुल्ला और रज्ज़ाक ठठा कर हँस पड़े।

रज्ज़ाक ने कहा—अबे सादुल्ला, शाबाश ! फ़क़ीरों की मौत के बाद भी अच्छी कटती है ! कहाँ तो ये ज़िंदे हैं कि कभी कोई नहीं आई और यहाँ इन मरों के ऐश हो रहे हैं ! ?

सादुल्ला ठठा कर हँस पड़ा और उसने उस स्त्री का हाथ पकड़ लिया। स्त्री भय से काँप उठी। उसका श्वास रुद्ध हो गया।

उस समय रात गहरी हो गई थी। और शाह का मज़ार सो रहा था।



'क्यों ? क्यों ? मुल्लाजीने उत्सुक हो कर पूछा। बच्ची के गाल फूले-फूले थे, ऐसे जैसे कि उस उम्र के बच्चों के नहीं होने चाहिये। लेकिन बाप तन्दुरुस्त है, एक झलक एक रोज मां की भी देखी ही है। फिर बालक अच्छा हो तो क्या ताज्जुब ?

बालिका ने उल्टे हाथसे आंखों को मसला; मिचमिचायी और नीचे का ओठ जैसे अपने आप स्वदक उठा।

'क्या बात है बेटी बिन्नो ! मुल्लाजी चुमकार कर पूछते हैं। 'हम तुमको मिठाई देंगे। रोती क्यों है, बता न ?

बस बच्ची ने जोरसे रोना शुरू कर दिया। मुल्लाजी नहीं जानते, बालकों का दिमाग कैसा होता है। चक्कर में पड़कर उधर देखा। गबरू ने कहा, कहो गोविन्द, जमेगी ? परसों दिवाली है न ?

'अब के तो जरूर खेलूंगा भैया, नहीं तो काम कैसे चलेगा। अब रोजगार खतम ही हो गया। तब इसकी मैयाने रोज-रोज इसे जलेबी की आदत डाल दी थी। अब सूखी रोटी की बात है। गले के नीचे रांड़ के उतरती ही नहीं। बस दिन रात 'रें रें' लगी रहती है। कुछ भी हो, अब के तो किस्मत अजमानी ही होगी।'

मुल्लाजी ने फिर सोलह कौड़ीपर नजर जमायी। गबरू हँसा। बोला—पक्की ?

'पक्की।' गोविन्द ने उत्तर दिया। मुल्लाजी ने उपेक्षा से कहा, अब चलोगे भी ?

गबरू फिर खेल पर झुक गया।

२

घर-घरमें दीये जल रहे थे। सड़कें जगमगा रही थीं। यह इस साल की दूसरी दिवाली थी। पहली जर्मनी की हार पर मनवाई गई थी, दूसरी अब धर्मके कारण मनाई जा रही थी। सड़कों पर लोग रोशनी देखने के लिए घूम रहे थे।

मुल्लाजी की कोठरी में जुआ हो रहा था। पांसा फेंका जा रहा था।

गबदू ने जोरसे फेंक कर कहा, पौ बारहा।

'ठेंडे !' गोविन्द ने अंगूठा दिखाकर कहा—देख बेटा। मैं जानूं, अभी पूरी तरह से तो नहीं फूटी ?

मुल्लाजी ने झुक कर देखा और कहा : दुग्गी।

गबदू का हाथ कांपा। गोविन्द ने हाथ पसारकर कहा—बढ़ा इधर।

दबा लिये परों के नीचे पैसे। और आंख मींचकर फिर पांसे को उठाकर कहा : हार जाऊं तो एक-न-एक खून होना लाजमी है। पौ बारा...!

स्वर जब लौटकर पांसे पर आ टिका, सचमुच पौ बारा था।

गोविन्द की आंखों के सामने एक बार पत्नी का चित्र घूम गया। आज वह उसकी खंगवारी गिरवी रखकर रुपये लाया था। लेकिन अब वह तीन बनवा सकता है। मन-ही-मन सोचता —मजाल है कि हार जाऊं ! पंडित का भेजा फोड़ दूंगा सालेका। सीधा दिया है, चार आने दच्छिना के धरे हैं। कोई दिल्लगी है ? हार कैसे जाऊँगा। पंडित ने कहा था कि दौज तक मिट्टी को छूले तो सोना हो जायेगा और उसके बाद...

उसके बाद की पैसा की तैसी। उसके बाद जुआ खेला तो चूल्हे में जला दूंगा उस हाथको। बैठी होगी बेचारी वहीं आस-स। जै मां लच्छमी...'

मुल्ला और गबदू हारे बैठे थे। उदास होकर मुल्ला ने गबदू की ओर देखा। गबदू खिसिया रहा था। बोला—बस ? बटोर के चल दिये ? जैसे दिवाली खतम हो गयी।'

'कसम है गोविन्द ! दगा मत करना। यारी में खलल आ जायेगा। यारों के बिना जहान सूना है। समझ लो लुगाई का, क्या भरोसा। पेट भरोगे, गहना दोगे, तबतक रहेगी, नहीं किसी और के जा बैठेगी।

गबदू ने तावसे कहा—अजी हो ली मुल्लाजी। हमें न मालूम था, वरना हम नहीं आते तुम्हारे यहां। सौगन्ध है, नत्था के यहां जाते तो कलेजा भी तर रहता।

'अबे रोता क्यों है ?' गोविन्दने आगे सरक कहा—मैंने तो सोचा कि यारों के ज्यादा चूना नहीं लगाना चाहिये। कहीं और जाकर खेलो। मेरा तो भाग जाग गया है; कसम से। एक भी दाँव हारा हूँ ?

'नहीं तो'—गबदू ने कांप कर पूछा।

'मैंने पंडित से पूछा था।'

'तो तू आज शहर के बड़े सेठों में क्यों नहीं गया ? वहां तो छक्के छुड़ा देता।

एक बार आशा कांप उठी। क्या यह नहीं हो सकता ?

'मगर' मुल्लाजीने कहा—'घुसने कौन देगा ? शुरू में भी तो हजार दो हजार होने चाहिये ?'

'देवा कसम' गबदू ने तैश में आकर कहा—'तुम भी चुगद हो मुल्लाजी।' वह प्रातःकाल जब खोंम्चा लगा कर बेचता है तो आकर्षित करने के लिए जलेबी गरम के स्थान पर आवाज देता है—जलेबा गरम। इसीसे जोश में उसके मुँहसे 'देवी' की जगह 'देवा' निकल गया।

पल भरको गोविन्द की आखों के सामने समा बंध गया। वह कपड़े बदलकर सेठों में घुसा है और जुआ हो रहा है।

फिर याद आये किस्से। एक बार एक बाबू सेठ के यहां गया। सेठ बैठा कुछ सोच रहा था। पूछा—क्यों आये हो बाबू ?

'जुआ खेलने।'

'अण्टीमें क्या है ?' सेठ ने पूछा।

'पांच हजार।'

सेठ हिकारतकी हंसी हंसा। जूती उठाकर बोला—शर्त बदते हो ? जुआ तो इसके बाद होगा।

'किसकी ?' बाबू ने सहमकर पूछा।

'बोलो, कल जापानी बम पड़ेंगे कलकत्ते पर कि नहीं ?'

'पड़ेंगे।'

'तो देखो कल पड़ गये तो पन्द्रह हजार ले जाना; नहीं तो पांच हजार दे जाना।'

जूती उलटी पड़ी; तब तो पड़ेंगे।

कहते हैं, बम नहीं गिरे और बाबू भी नहीं लौटा।

वह मन-ही-मन कांप उठा। कहीं उसके साथ भी नहीं पड़े तो वह क्या खाकर लौटेगा ?

सेठों को क्या दस हजार की रिश्वत देते हैं, एक लाख इधरसे उधर करते हैं।

उसी समय गबदू ने फिर कहा—'उसका नाम हो जायेगा और ठाठ हो जायेंगे। लड़ाई नहीं रही, न सही; मगर कण्ट्रोल तो नहीं हटा। पौ बारा......

गोविन्द कांप उठा। यह नहीं हो सकता। बाहर नौकर ही नहीं घुसने देंगे। सेठकी क्या बेइज्जती नहीं है कि वह हमसे खेलेगा ?

मुल्लाजी को कोई दिलचस्पी नहीं थी। रुईके पशगी रुपये ले लिये क्या किया जाये ?

गबदूकी बातसे गोविन्द का हृदय बल्लियों उछला। मोटरें चलेंगी भगवान का क्या ठीक ! कब छप्पर फाड़ दे। दो ही दिन की बात है, फिर वही अँधेरा । अब के असली दिवाली आयी है। कमबखत लड़ाई जरा और चल जाती, तो उसने भी लाखों कमा लिये होते। लाखों.........

वह स्वयं अपनी वास्तविकता भूल गया। मुल्लाजी ने अन्तिम दांव मारा। कहा—अब के आ जाओ ?

'देखो ! समझ लो।'

'समझ लिया सब।'

'मर्जी तुम्हारी। बीच में नहीं उठने दूंगा। पूरा खेलना होगा। सारी रकम लगा दी है तुमने। दूकान धरते हो !

रुकते स्वर से मुल्लाजी ने कहा-अच्छा।

'अच्छा-बच्छा नहीं। पहले कसम है। रहम का काम नहीं। पहले सोच लो।'

मुल्लाजी ने सिर हिलाया।

गोविन्द ने पांसा फेंककर कहा—मारा है। पौबारह।

झुककर देखा। विश्वास नहीं हुआ। बढ़ा हुआ हाथ मुल्लाने पीछे खींच लिया।

'देख लो फिर कहोगे मैंने छू दिया है।'

देखा। गोविन्द ने आंख फाड़कर देखा। फिर उठाया। हाथ कांप रहा था। गबदू ने उछलकर कहा—सौ रुपये। बेटा, एक नहीं ले जाने दूंगा। फिर दुग्गी ? मुल्ला और गबदू ठठाकर हंसे।

'निकाल दे सब। खोल दे अंटी।'

मारा जाऊँगा कसम से, बहू की खंगचारी है। मर जायेगी। गबदू देख, लौंडिया भूख से तड़प-तड़प कर मर जायेगी!

लेकिन गबदू हँसकर पैसे गिन रहा था।

क्रोध से व्याकुल होकर गोविन्द ने कहा—मैं पण्डित का खून कर दूंगा।

दोनों ठठाकर हंस पड़े। मुल्लाजी ने कहा—फांसी चढ़ जायेगा। फिर तेरे बीबी बच्चों का क्या होगा?

गोविन्द को चक्कर आया और अपनी सल्तनत के खंडहर पर अपने आप बे-जान-सा बैठा रहा।

मुल्लाजी कह रहे थे—गबदू! जा बे, दो आने के दीये तो ले आ। लक्ष्मी माई ने आज जान बचायी है। दिये तो जला दूं।

गबदू रुपये अंटीमें खोंस रहा था। बोला—मारो गोली मुल्लाजी। इस भगवान का भी क्या भरोसा!

२.

दीये बुझ चले थे। चारों तरफ फिर सन्नाटा छा गया था।

मुल्लाजी बराबर धुन रहे थे। रुई उड़-उड़कर इधर-उधर छितर रही थी। उन्होंने द्वार बन्द कर लिया था। एकाएक द्वार पर किसी ने आहट की। आवाज दी—कौन है?

कोई नहीं बोला। मुंह पर का कपड़ा उतार कर दरवाजे का कुंडा उतारी। बाहर देखा—कुछ नहीं। कुत्ता पीठ खुजा रहा था। उफ़! क्या सोचा था, क्या हो गया। गोविन्द नहीं आयेगा।

लौटकर फिर मुंह और नाकपर कपड़ा बांधा। और धुनने में लग गये। आवाज भुर्र झट-झट, भुर्र झट-झट करके कोठरी में गूंजने लगी और रुई का, छितरी हुई मुलायम रुई का ढेर सामने बढ़ता ही चला आ रहा था।

दिवाली भी हो गयी। दीये भी बुझ गये। मिठाइयां भी खतम हो गयी होंगी। लोग सो रहे हैं...............

भुर्र भुट भुट, भुर्र भुट भुट......

एकाएक हाथ रुक गया। लेकिन गोविन्द की दिवाली ? कैसी मनी होगी उसकी दिवाली ?

हृदय में एक टीस हुई। अपने ऊपर एकाएक एक विक्षोभ हुआ। किसलिए चाहिये उन्हें वह पैसा ? भूखी होगी बेचारी बिल्लो। रो न दिया होगा मां का दिल आज बेचारी बच्चों को दो बताशों के लिए तड़पता हुआ देखकर !

किन्तु हाथ फिर चलने लगा। मन का भार एक रुई है, जिसे आज वह धुन देना चाहते हैं; क्योंकि उसका अन्त जान-कर भी अपना माध्यम वे नहीं समझ पाये हैं।

मुल्लाजी ने व्यथित होकर हाथ फिर रोक दिया। एक बार बाहर आ गये। आसमान में तारे अब भी छिटक रहे थे, जैसे किसीने मुट्ठियों में भर-भरकर खील बिखेर दी हो। याद न आयी होगी उस बेचारी बच्ची को कि भगवान ने आसमान तक में आज खील बिखेरी है, फिर हमारे ही घरने क्या बिगाड़ा है ? क्या कहा होगा गोविन्द ने घर जाकर ! कैसे घुसा होगा वह भीतर !

और फिर मुल्ला की चेतना में किसी ने गर्म लोहे का स्पर्श किया। किन आंखों से देखा होगा उस औरत ने अपने शौहर की बरबादी को ? किस अरमान से उतारी होगी उसने अपने गले से वह खंगवारी। नहीं दिया अल्लाहने, कहर गिरा दिया। पिघले हुए सीसे से भी भयानक होंगे उसके आंसू, जिसमें इंसान की नफ-रत, और औरत की कसम, और वह मां की ममता, सब मिलकर चिल्ला उठे होंगे। वही, जिन्हें यारोंके पत्थर दिल ने ऐसे कुचल

दिया, जैसे कसाई के हाथ जिन्दी मुर्गीका गला उमेठकर आधा काटकर तड़फड़ाने के लिए फेंक देते हैं और स्वर न गलसे निकलते हैं, न वदनमें इतना खून ही रहता है कि कुछ नहीं तो कमबख्त आंसू ही बनकर लहराता हुआ घुमड़ आये, अरमान का मवाद बनकर वह निकले।

मुल्लाजी भीतर लौट गये। गिनकर देखे। ३२ रुपये थे। उठाकर मुट्ठीमें बांध लिये। एक बार हाथ खोलकर नजर डाली दीयेकी धुंधली रोशनी में भी कैसे चमक रहे हैं! कैसी तड़प है! कितना पानी! सारी बीमारियों की एकमात्र दवा! सारे दुख दूर हो जाते हैं। स्नेह से, फिर मुट्ठी बांध ली, जैसे बाबर ने हुमायू के लिये अपनी जान की कुर्बानी देने तक में हिचक नहीं दिखायी थी।

पड़ोस में किसी बालक के रोने का शब्द सुनाई दिया। याद आ गई फिर वह दो मुलायम नजरें। कितनी मासूम, भोली व निर्मल!

मुल्लाजी की मुट्ठी ढीली पड़ गयी। सामने ही रुई पड़ी है। सारी जिन्दगी बीत गयी। फिर यह रौनक कितने रोज की है? इस दफीने का क्या होगा, जिसपर किसी की बेबसी का सांप अपना जहर उगल रहा है।

रात के उस सूनेपन में जब मुल्लाने दरवाजे पर थपकी दी, भीतर जागनेके स्पष्ट लक्षण थे।

एक औरत ने द्वार खोला।

'कौन है?'

'मैं हूं। गोविन्द है?'

'क्या है?' औरत ने रूखे स्वर से पूछा।

'यह रुपये दे देना उसे। कहना मुल्ला को जुए के रुपये नहीं चाहिये। वह कोई बनिया नहीं है कि दूसरों का गला काट कर चिराग जलाये। गोविन्द की बच्ची भूखी रहे और मुल्ला खुशियां मनाये, यह नहीं हो सकता।'

'लेकिन उन्हें आ जाने दो। तभी रुपये दे देना।

'कहां गया है ?'

'जुआ खेलने।' स्वर में भयानक करुणा का अथाह-त्रस्त-विश्व रूदन कसक रहा था।

'जुआ खेलने ?' मुल्लाने विस्मयसे पूछा—'पैसा ?'

'अब के मेरी बिछिया ले गये हैं।'

'परवरदिगार !' मुल्ला का स्वर गिड़गिड़ा उठा। स्त्री देखती रही। मुल्ला लौट पड़ा। उसे हाथमें रुपये ऐसे लग रहे थे, जैसे उसने जलते तवेपर हाथ रख दिया हो और छुड़ाये न छूटता हो। उसका हृदय तेजी से धड़क रहा था।

एकाएक मुल्ला चिल्ला उठा—गोविन्द !

सड़कपर पड़े हुए आदमी में तनिक भी चेष्टा नहीं हुई। मुल्ला ने देखा, उस समय गोविन्दके मुंहसे बू आ रही थी। उन्हें ऐसा लगा, जैसे वह आज सारे जीवन का जुआ हार चुके हों। रुपये चुपचाप उसकी जेब में रख दिये और सिर झुकाये हुए बढ़ गये, जैसे जवानीमें वेश्या के कोठे से उतर कर झेंपते हुए चले जाते थे।



[सौ